अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान विज्ञान

भाग 4

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

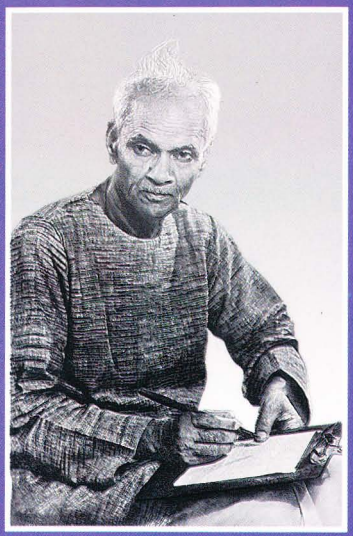

''लोग हमें संत, सिद्ध, ज्ञानी मानते हैं, कोई लेखक, वक्ता, विद्वान् और नेता समझते हैं, पर किसने हमारा अन्तःकरण खोलकर पढ़ा-समझा है? कोई उसे देख सका होता, तो उसे मानवीय व्यथा-वेदना की अनुभूतियों की करुण-कराह से हाहाकार करती एक उद्विग्न आत्मा भर इन हड्डियों के ढाँचे में बैठी-बिलखती दिखाई पड़ती।''

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान विज्ञान

(भाग-4)

(पातञ्जल योग दर्शन की सरल हिन्दी भावार्थ दीपिका)

कैवल्यपाद

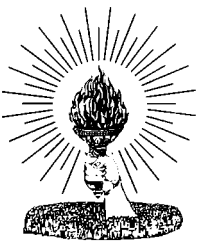

टीका एवं संपादन
डॉ० प्रणव पण्ड्या

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लेखक
डॉ. प्रणव पण्ड्या

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

प्रथम खण्ड का प्रकाशन
चैत्र नवरात्रि, २०१६

मूल्य: ₹ 35/-

पत्र व्यवहार का पता
गायत्रीतीर्थ-शान्तिकुञ्ज
हरिद्वार - 249411 (उत्तराखण्ड)
फोनः01334 260602
फैक्सः 01334 260866
www.awgp.org

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अन्तर्ज्ञान

अन्तर्यात्रा का ज्ञान-विज्ञान युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में अन्तर्ज्ञान के रूप में अन्तर्चेतना में प्रकाशित हुआ। इस अन्तर्ज्ञान में अपनी समर्पण, साधना स्वरित एवं मुखरित हुई। इसी में योगऋषि पतंजलि के सूत्रों का सत्य उद्घाटित और प्रकाशित हुआ। अपना यह अन्तर्ज्ञान सद्गुरु की चेतना का एक समर्पित शिष्य की चेतना में सम्प्रेषण था। अनुभवों का योग प्रत्यावर्तन था। बाद में उनसे ही प्रेरित होकर एक प्रज्ज्वलित दीए से अनेकों दीपों को प्रज्ज्वलित व प्रकाशित करने का साहस जागा। इसी के परिणाम में अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान : भाग-१, अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान : भाग-२ एवं अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान : भाग-३ अब तक प्रकाशित किए जा चुके हैं। इनमें क्रमिक रूप से समाधिपाद, साधनपाद एवं विभूतिपाद के सूत्रों का अन्तर्बोध कराया गया था।

इसी के साथ अन्तर्यात्रा अपने गन्तव्य की ओर पहुँचने लगी है। अब अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान : भाग-४ प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें कैवल्यपाद के सूत्रों का सत्य उद्घाटित हो रहा है। कैवल्य अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों का अन्तिम निष्कर्ष है। अन्तर्यात्रा की अन्तिम मंजिल है। महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन को चार अध्यायों में विभाजित किया है। सूत्रकार ऋषि ने योगसूत्र को चार चरणों या चार पादों में वर्गीकृत किया है। कैवल्यपाद इनमें से चौथा पाद है। इसे चतुर्थ अध्याय भी कह सकते हैं। पहले के तीन अध्याय १. समाधिपाद, २. साधनपाद एवं ३. विभूतिपाद इस ४. कैवल्य पाद में स्वत: ही समाविष्ट हो जाते हैं। इस सत्य पर, इस तत्त्व पर इस ढंग से भी सोच सकते हैं कि कैवल्य, प्रथम अध्याय अर्थात् समाधिपाद में वर्णित सभी तरह की समाधि का शिखर अनुभव है। यह दूसरे अध्याय अर्थात् साधनपाद में वर्णित सभी साधनाओं का शिखर परिणाम है। यह कैवल्य तृतीय अध्याय अर्थात् विभूतिपाद में वर्णित सभी विभूतियों के मध्य शिखर विभूति है। इसके सर्वोच्च शिखर में सभी कुछ अन्तर्निहित है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कहते हैं कि एक बार महर्षि पतंजलि ने अपने आश्रमवासी साधनारत शिष्यों को प्रश्नों के लिए आमंत्रित किया। एक शिष्य ने पूछा- ''जो लोग अपनी शिक्षा के लिए, साधना के लिए परिश्रम करते हैं, वे भविष्य में मिलने वाले कौन-कौन से पुरस्कारों की आशा कर सकते हैं ?''

ऋषि पतंजलि ने कहा- ''वही प्रश्न पूछो जो तुम्हें तुम्हारे स्वरूप का परिचय दे। वही प्रश्न पूछो जो स्वयं के केन्द्र के निकट हो।''

दूसरे शिष्य ने उनसे जानने का प्रयास किया- ''गुरुदेव! मैं अपनी मूढ़ताओं को कैसे रोकूँ, जो मुझे दोषी सिद्ध करती हैं ?''

सूत्रकार महर्षि ने फिर से अपनी बात दोहराते हुए कहा- ''वही प्रश्न पूछो, जो स्वयं के केन्द्र के निकट हो।''

तीसरे शिष्य ने पूछा- ''गुरुदेव! हम अब तक नहीं समझ सके कि स्वयं के केन्द्र के निकट का प्रश्न पूछने का क्या मतलब होता है ?''

इस पर महर्षि पतंजलि ने कहा- ''दूर देखने के पहले अपने निकट देखो। वर्तमान क्षण के प्रति सचेत रहो क्योंकि वह अपने में भविष्य और अतीत के उत्तर लिए रहता है। अभी तुम्हारे मन में कौन-सा विचार आया ? अभी तुम मेरे सामने विश्रान्त अवस्था में बैठे हो या तुम्हारा शरीर तनावपूर्ण ही है ? अभी तुम्हारा ध्यान पूरी तरह से मेरी ओर ही है या थोड़ा बहुत ही है ? इस तरह के प्रश्न पूछकर स्वकेन्द्र के निकट आओ। निकट के प्रश्न ही दूर के उत्तरों तक ले जाते हैं। स्वकेन्द्र की निकटता ही स्वकेन्द्र का परिचय कराती है और स्वकेन्द्र का परिचय ही स्वकेन्द्र में प्रतिष्ठा प्रदान करता है। स्वकेन्द्र में हुई यही प्रतिष्ठा कैवल्य है।''

कैवल्य का अर्थ है स्वतन्त्र होना, सम्पूर्ण होना। अकेले होना, अकेले होने की परम स्वतन्त्रता। किसी व्यक्ति, किसी वस्तु अथवा किसी घटनाक्रम या परिस्थिति पर निर्भरता नहीं। अपने में अपने आप से पूरी तरह से सन्तुष्ट, यही योग का लक्ष्य है। योगसूत्र में इसी के लिए विधियाँ हैं, विज्ञान हैं, प्रयोग हैं, प्रक्रियाएँ हैं। इन सबका सम्मिलित परिणाम कैवल्य है।

योग इसी के प्रति जागरुक करता है। जीवन में एक विशिष्ट दृष्टिकोण विनिर्मित करता है। प्रचलित अर्थों में योग दार्शनिक ज्ञान तक सीमित नहीं है। योग कोई तत्त्वमीमांसा नहीं है। वह दूर के, सुदूर के प्रश्नों की फिकर नहीं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करता- पिछला जन्म, आने वाला जन्म, स्वर्ग-नरक, देवी-देवता इस तरह की फिक्र पतंजलि और उनके सूत्रों को नहीं है। योग का सम्बन्ध स्वकेन्द्र के निकट के प्रश्नों से है। जितने निकट का प्रश्न होता है, उतनी ही अधिक सम्भावना उसे सुलझाने की होती है। अगर व्यक्ति अपने निकट से निकट का प्रश्न पूछ सके, तो पूरी सम्भावना है कि पूछने मात्र से ही वह सुलझ जाए और जब हम निकट का प्रश्न सुलझा लेते हैं तो पहला कदम अपने आप उठ जाता है। तब समझो की अन्तर यात्रा का आरम्भ हो गया। तब धीरे-धीरे वे प्रश्न भी सुलझने लगते हैं, जो दूर के होते हैं, लेकिन योग की पूरी प्रक्रिया अपने केन्द्र के निकट ले आने की है। स्वयं को स्वयं में प्रतिष्ठित करने की है।

कैवल्य शब्द में प्रेरणा है, सचेतना है। कैवल्य शब्द में केवल समाविष्ट है। इसमें अकेलापन है। अभी तक हम भीड़ की तरह जिए हैं। कैवल्य की ओर बढ़ने का मतलब यह हुआ कि अब लयबद्ध होने लगे। भीड़ से अकेलेपन की ओर बढ़ने लगे। अनेक से एक होने लगे। हमारा एकजुट होना, हमारा केन्द्रीकृत होना हमारी नैसर्गिक आवश्यकता है और जब तक हम केन्द्र को नहीं पा लेते, तब तक जो भी करते हैं, सब व्यर्थ है। जीवन और समय का व्यर्थ विनष्ट होते जाना है। पहली आवश्यकता है केन्द्र बिन्दु। और जिसके पास यह केन्द्र है, वही व्यक्ति आनन्दित हो सकता है। हर व्यक्ति आनन्द की माँग करता है। लेकिन यथार्थता, सत्यता मांग करने में नहीं, बल्कि इसे अर्जित करने में है।

अन्तस की आनन्द अवस्था के लिए सब लालायित रहते हैं, लेकिन केवल केन्द्रस्थ व्यक्ति ही आनन्दित हो सकता है, भीड़ भला कैसे आनन्दमय हो सकती है। भीड़ तो बस उत्तेजित हो सकती है, उन्मादित हो सकती है, आक्रोशित हो सकती है, अव्यवस्थित हो सकती है। भीड़ का कोई व्यक्तित्व नहीं होता। वहाँ कोई आत्मा नहीं, इसलिए आनन्दमय होगा तो कौन ? आनन्द का अर्थ है- एक परम मौन। और ऐसा मौन तभी सम्भव है, जब भीतर लयबद्धता हो। जब सारे बेमेल टुकड़ों का मेल हो जाए, वे एक बन जाएं। जब भीड़ न रहे, बल्कि हम केवल एक ही हों। जब भीतर घर में कोई न हो, बस हम अकेले हों। तब अपने आप हम आनन्द से भर जाएँगे। पर अभी तो हर एक हमारे घर में है। हम वहाँ हैं नहीं, बस सारे मेहमान भरे हैं। मेजबान तो सदा ही अनुपस्थित है और केवल मेजबान आनन्दमय हो सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महर्षि पतंजलि की सारी सिखावन, सारे अनुशासन इसी के लिए हैं। सभी का हेतु यही कैवल्य है। अंग्रेजी में अनुशासन को डिसिप्लिन कहते हैं। यह डिसिप्लिन शब्द भी अनुशासन की भाँति ही सुन्दर है। इसकी जड़, इसका उद्‌गम वही है, जहाँ डिसाइपल का उद्‌गम हुआ है। डिसाइपल यानि कि शिष्य- सीखने के लिए प्रतिबद्ध। महर्षि ने पिछले तीन अध्यायों में यही सिखावन दी है। इसी के लिए अनुशासन दिए हैं। सभी का मन्तव्य, सभी का गन्तव्य यही कैवल्य है।

इस सत्य का बोध कराने वाली एक अति प्रेरक बोधकथा है, बुद्ध कथा है। एक बार एक व्यक्ति भगवान बुद्ध के पास आया। वह व्यक्ति समाज सुधारक था। उसने भगवान बुद्ध से कहा- ''संसार बहुत दुःख में है, आपकी इस बात से मैं सहमत हूँ।'' बुद्ध ने यह कभी कहा ही नहीं कि 'संसार दुःख में है।' बुद्ध का तो वचन है- 'तुम दुःख में हो, संसार नहीं। जीवन दुःख में है, संसार नहीं। मन दुःख में है, संसार नहीं।' लेकिन उस समाजसुधारक व्यक्ति ने कहा- ''संसार बड़ी पीड़ा में है। मैं आपसे सहमत हूँ। अब मुझे बताइए कि मैं क्या कर सकता हूँ? बड़ी गहरी करुणा है मुझमें और मैं मानवता की सेवा करना चाहता हूँ।''

बुद्ध ने उसकी ओर देखा और वे मौन ही रहे। बुद्ध के शिष्य आनन्द ने कहा- ''यह आदमी सच्चा जान पड़ता है। इसे राह दिखाइए।'' तब बुद्ध ने उससे कहा- ''तुम संसार की सेवा करना चाहते हो, लेकिन तुम हो कहाँ? मैं तुम्हारे भीतर किसी को नहीं देख रहा। मैं देखता हूँ और वहाँ कोई नहीं है। तुम्हारा कोई केन्द्र नहीं। और जब तक तुम्हारे भीतर कोई ठोस केन्द्र नहीं बनता, तब तक तुम जो भी करोगे, उससे और अनिष्ट होगा।'' कह सभी रहे हैं कि संसार बड़े दुःख में है, किन्तु वे जो कर रहे हैं, उससे यह दुःख बढ़ रहा है लेकिन सभी आदत से मजबूर हैं। दुःख को हटाने के लिए, दुःख को मिटाने के लिए कैवल्य मन्दिर में प्रवेश करना होगा। स्वयं में स्वयं को प्रतिष्ठित करना होगा। इस चतुर्थ और अन्तिम भाग में इसी का बोध है, इसी की बात है। इसके सभी पृष्ठों में इस कैवल्य के सत्य की स्पष्टता है, प्रतिष्ठा है।

- डॉ. प्रणव पण्ड्या

चैत्र नवरात्रि!

२०१६

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुक्रमणिका

पाँच प्रकार की होती है सिद्धियाँ.....09
चित्त में परिवर्तन से बदलते है घटनाक्रम 13
प्रकृति स्वयं पूरा करती है अपना लक्ष्य.....17
निर्माण चित्त से सम्भव है अनेक देह 21
अनेक चित्त का निर्माण व नियंत्रण कर सकता है- योगी.....25
ध्यान से होती है सम्पूर्ण चित्त शुद्धि 29
कर्मों की गति से पार है योगी 33
गहरे हैं कर्म के रहस्य 37
संस्कारों के अनुरूप घटता है-कर्मफल भोग.....41
अनादि है वासनाएँ 45
जानें वासना के कारणों को 49
वासना कभी नष्ट नहीं होती 53
पल-पल रूप बदलती है वासनाएँ.....57
वासना से उत्पन्न होती है अनन्त अनुभूतियाँ.....61
चित्त परिवर्तन से बदलती है अनुभूतियाँ 65
प्रकृति से भिन्न है चित्त का अस्तित्त्व.....69
चित्त में समाहित मनोविज्ञान 73
चित्त का स्वामी व ज्ञाता है पुरुष.....77
स्वप्रकाशित नहीं है चित्त.....81
एक समय में एक ही ज्ञान प्रकट होता है चित्त में 85
सम्भव है चित्त से चित्त का ज्ञान.....89
चित्त नहीं चेतन पुरुष है हमारा स्वरूप 93
जीवन के सब अर्थ समाये हैं चित्त में 97
असंख्य वासनाओं का घर है चित्त 101

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आत्मभावना द्वार है अध्यात्म का.....105
विवेकज्ञान के उदय से प्राप्त होता है कैवल्य 109
निर्लिप्त होता है योगी का जीवन 113
विवेकज्ञान से सम्भव है संस्कारों का विनाश 117
विवेक-वैराग्य का शिखर है-धर्ममेघ समाधि.....121
क्लेश-कर्म से रहित होता है- जीवनमुक्त योगी.....125
आवरण के हटते ही होता है- असीम ज्ञान.....129
कृतार्थ हो जाता है योगी का जीवन 133
कैवल्य में थम जाता है- नये जीवन का क्रम 137
स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है- कैवल्य 141
उपसंहार 144

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

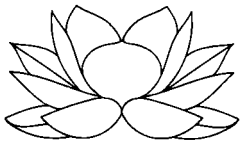

पाँच प्रकार की होती है सिद्धियाँ

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की पूर्णता कैवल्य है। इस अवस्था में न तो कर्त्तव्य शेष रह जाता है और न कोई कर्म। अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग- योग की साधना चित्त का क्रमिक रूप से परिष्कार करते हैं। इसी के साथ चित्त की अवस्थाएँ भी क्रमशः परिवर्तित होती हैं। मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त अवस्थाएँ विलीन होती हैं। इसी के साथ चित्त में पहले एकाग्र अवस्था बाद में निरुद्ध अवस्था का प्रादुर्भाव होता है। इन परिवर्तनों के साथ साधना जीवन में भी अनेक परिवर्तन होते हैं। जो नवीन लक्षणों को और नवीन अनुभूतियों को प्रकट करते हैं। सामान्य जीवन जिसे कभी इन्द्रियाँ चंचल किया करती हैं, जिसे पंचभूत व्याधि एवं व्यवधान दिया करते हैं। वही इस साधना प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद योग-साधक के स्वामित्व को स्वीकार कर लेते हैं। प्रकृति अनेकों विभूतियों का वरदान देती है। जो वरदान भी है और प्रकृति द्वारा आयोजित परीक्षाएँ भी। इन्हें उत्तीर्ण करने पर उसे प्राप्त होती है परिष्कार की पूर्णता। इसी के साथ अनुभव होता है कैवल्य का।

चित्त एवं पुरुष इन दोनों की समान भाव से शुद्धि होने से कैवल्य होता है। इस सूत्र की यथार्थता कहती है कि समस्त साधना का मर्म शुद्धि है। साधना जीवन की समस्त अनुभूतियाँ, सारी उपलब्धियाँ, सम्पूर्ण विभूतियाँ इसके लिए त्यागी जानी चाहिए। जो इनमें अटकता है, भटकता है, उलझता है और फँसता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है, वह अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता है। जैसे-जैसे चित्त की शुद्धि प्रगाढ़ होती जाती है। वैसे-वैसे पुरुष अपनी भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है। अविद्या के कारण तादात्म्यता के जिन अनुभवों ने उसे जकड़ रखा था, वे सभी खुल जाते हैं। अविद्या के विसर्जन ने अन्य सभी चारों क्लेशों- अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश का भी अस्तित्त्व नहीं रह जाता है और फिर शुद्धि साम्यता कैवल्य की अनुभूति शेष रह जाती है।

चतुर्थ अध्याय यानि कि कैवल्य पाद। योगऋषि पतंजलि इस अध्याय के अपने पहले सूत्र को कहते हैं-

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ ४/१ ॥

शब्दार्थ= **जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः** = जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मंत्र से होने वाली, तप से होने वाली और समाधि से होने वाली (ऐसे पाँच प्रकार की); **सिद्धयः**= सिद्धियाँ होती हैं।

भावार्थ= जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मंत्र से होने वाली, तप से होने वाली और समाधि से होने वाली- इस तरह पाँच प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं।

विभूतिपाद में विभूतियों का, विलक्षण शक्तियों का, सिद्धियों का वर्णन किया गया था। महर्षि कैवल्यपाद के इस प्रथम सूत्र में इनके कारण को स्पष्ट करते हैं। वह बताते हैं कि सभी तरह की सिद्धियों के प्रकार पाँच हैं। इन्हीं में उनके कारण का भी संकेत है। ये हैं- १. जन्म से होने वाली सिद्धियाँ, २. औषधि से होने वाली सिद्धियाँ, ३. मंत्र से होने वाली सिद्धियाँ, ४. तप से होने वाली सिद्धियाँ एवं ५. समाधि से होने वाली सिद्धियाँ। सिद्धियों के सभी प्रकार कहते हैं कि भिन्न-भिन्न कारणों से शरीर में, इन्द्रियों में और चित्त में जो परिवर्तन होते हैं, उनसे इन शक्तियों का प्राकट्य होता है। इन परिवर्तनों के प्रकट कारण इनमें जो कुछ भी हों, पर अप्रकट में कारण होती है जन्म-जन्मान्तर में की गयी साधना, किए गए शुभ कर्म। जो भले ही उस समय अपने परिणाम न दे सके हों, पर बाद में उचित एवं उपयुक्त समय आने पर स्वयं को प्रकट करते हैं और शुभ संयोगों को घटित करते हैं।

अब आवश्यक है इन पांचों प्रकारों पर क्रमिक रूप से विचार करना- **१. जन्म से प्राप्त होने वाली सिद्धि**- साधना निरन्तर होती रहे, तो शरीर बाधा नहीं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बनता। एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँचने पर, नया जन्म मिलने पर यह साधना स्वयं को सिद्धि के रूप में प्रकट करती है। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में इस तरह की अपूर्ण साधना व साधक की चर्चा योगभ्रष्ट के रूप में की है जिसमें अधूरेपन के बावजूद शुभ संयोगों व अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। गीता में इसके दो प्रकार गिनाए गए हैं- १. **शुचीनां श्रीमतां गृहे**- अर्थात् पवित्र धनी घर में जन्म एवं २. **योगिनां कुले भवति**- योगियों के कुल में जन्म। महर्षि पतंजलि ने भी पहले अध्याय अर्थात् समाधिपाद के उन्नीसवें सूत्र में इसका उल्लेख करते हुए कहा- **भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्** (१/१९) विदेह एवं प्रकृतिलय योगियों का ऐसा योग भवप्रत्यय कहलाता है। इनमें जन्म से ही अनेकों अलौकिक शक्तियाँ देखी जाती हैं।

२. औषधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि- यह पूर्वकृत शुभ कर्मों के संयोग से घटित होता है। तन्त्रग्रन्थों में ऐसी अनेकों वनस्पतियों एवं रसों का उल्लेख किया गया है, जिससे शरीर व इन्द्रियों में अनेकों अलौकिक शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। परम अवधूत एवं चौबीस अवतारों में से एक भगवान दत्तात्रेय द्वारा प्रवर्तित रसेश्वरतन्त्र में इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया व विधि-विधान का वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि महान गुरु गोरक्षनाथ ने इसमें वर्णित प्रक्रियाओं का प्रयोग करके अपने शरीर को वज्र का बनाया था। पुराणों में ऐसी कई कथाएँ मिलती हैं जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार, किन औषधियों के लेप से कौन-सी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

३. मंत्र से होने वाली सिद्धि- साधना विज्ञान में मंत्रशास्त्र का अद्भुत स्थान है। मंत्रों के स्वतन्त्र प्रयोग भी हैं और इनके साथ अनेकों तांत्रिक विधियाँ व प्रक्रियाएँ भी जुड़ी हुई हैं। मंत्र विज्ञान का प्रयोग स्वतन्त्र भी किया जाता है और इसे योग विधियों एवं तन्त्र विधियों से भी जोड़ा जाता है। महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय अर्थात् साधनपाद के चौवालिसवें सूत्र में इसका संकेत करते हुए कहा है- **स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः** (२/४४) स्वाध्याय जिसमें मन्त्र साधना भी सम्मिलित है, से ईष्ट देवता की अनुभूति होने लगती है। तन्त्र शास्त्रों में मन्त्रों का प्रयोग- यन्त्रों, वनस्पतियों एवं कर्मकाण्ड के अनेक विधानों के साथ करके चमत्कारी शक्तियों को पाने का उल्लेख मिलता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

४. तप से होने वाली सिद्धि- तप अपने आप में साधना का सम्पूर्ण विधान एवं विज्ञान है। अध्यात्मशास्त्र, पुराणग्रन्थ इसकी महिमा से भरे पड़े हैं। पुराणों में अनेक तपस्वियों की चर्चा मिलती है। विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि ऋषियों के तप प्रसंगों का उल्लेख अनेक ढंग से कहा-सुना जाता है। महर्षि पतंजलि ने भी योगसूत्र के दूसरे अध्याय अर्थात् साधनपाद के तैतालिसवें श्लोक में इसका उल्लेख करते हुए कहा है- **कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः (२/४३)** अर्थात् तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।

५. समाधि से होने वाली सिद्धि- समाधि तो समस्त सिद्धियों एवं शक्तियों का स्रोत है। धारणा, ध्यान व समाधि के अभ्यास से शरीर, इन्द्रियों व चित्त में अपूर्व शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। ये शक्तियाँ समाधिजा सिद्धियाँ कही जाती हैं। समाधि व्यष्टि को समष्टि से जोड़ती है। इसके माध्यम से साधक में व्यापक अन्तरिक्ष के प्रवाह उतरने लगते हैं। समष्टि की अनेक शक्तियाँ व शक्ति प्रवाह व्यक्ति में आकर सघन हो जाते हैं। इसी वजह से समाधि के माध्यम से असम्भव को सम्भव किया जा सकता है। इससे मिलने वाली शक्तियों से व्यक्ति के जीवन के साथ समष्टि के जीवन में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन किए जा सकते हैं। महान् ऋषियों ने समाधि की शक्ति से ही अलौकिक कार्यों को सम्पन्न करने में सफलता पायी थी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

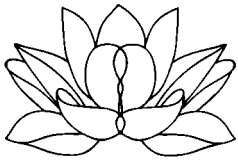

चित्त में परिवर्तन से बदलते है घटनाक्रम

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग प्रकृति के रहस्यों को अपने में संजोए हैं। जन्म-मृत्यु एवं जीवन के सभी घटनाक्रम चित्त की अवस्थाओं की अभिव्यक्ति है। जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं होता, जो चित्त भूमि से बाहर हो। जो कुछ चित्त में है, वही हमारे अपने जीवन के विविध घटनाक्रमों के रूप में प्रकट होता है। इसलिए यदि जीवन के घटनाक्रमों में परिवर्तन करना है तो हमें चित्त में परिवर्तन करना होगा। चित्तभूमि में की गयी फेरबदल हमारे जीवनक्र में फेर-बदल ला सकती है। अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग, योग की साधना विधियाँ इसी उद्देश्य के लिए हैं। तप की प्रक्रियाएँ तथा धार्मिक काण्ड भी कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण मकसद को पूरा करते हैं। परिष्कृत करने वाली सभी प्रक्रियाएँ जीवन को परिष्कृत एवं हमारे भविष्य को समुज्ज्वल बनाती हैं। यदि हमारे कार्य और इनकी दिशा विपरीत हुई तो इसके परिणाम भी जीवन में विपरीत ही आते हैं।

जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मंत्र से होने वाली, तप से होने वाली एवं समाधि से होने वाली इस तरह पाँच प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं। प्रत्यक्ष रूप से मिलने वाली इन सभी सिद्धियों के परोक्ष में हमेशा हमारे शुभ कर्म, सकारात्मक जीवन दृष्टि, हमारे द्वारा सम्पन्न की गयी साधनाएँ ही कारण बनती हैं। हमारे द्वारा अपने पिछले जन्मों में की गयी साधना ही इस जीवन में जन्म से मिलने वाली सिद्धि का कारण होती है। इसी तरह हमारे शुभ कर्मों के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संयोग से ऐसी कई चमत्कारी वनस्पतियाँ औषधियाँ भी विभिन्न साधना प्रक्रियाओं से मिलकर सिद्धि प्रदान करती हैं। तप साधना की निरन्तरता से जब अशुभ का क्षय हो जाता है, अशुद्धियाँ क्षीण हो जाती हैं, तो सिद्धियों का प्राकट्य होता है।

सिद्धि प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारण मंत्र भी है। मंत्र साधना यदि सम्यक् विधि से की जाए, इसके साथ यदि आवश्यक प्रक्रियाएँ एवं अनिवार्य कर्मकाण्ड जुड़े, तो मंत्र हमें तत्काल सफलता एवं सिद्धि प्रदान करते हैं। इसके बाद सिद्धि का कारण होती है समाधि। समाधि की साधना में कर्मकाण्ड एवं विधि-विधान जैसे किसी बाह्य प्रयोग एवं बाहरी उपचार की जरूरत नहीं पड़ती। समाधि में की जाने वाली साधना सूक्ष्म तल पर सम्पन्न होती है। इसमें स्थूल विधियों की न तो अनिवार्यता है और न ही व्यापकता। हाँ, इतना अवश्य है कि समाधि साधना से मिलने वाली सिद्धियाँ अनिवार्य रूप से व्यापक एवं अतिशय प्रभावशाली होती हैं।

सिद्धियों के विविध प्रकार बताने के बाद महर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में जात्यान्तर परिणाम को प्रकट करते हैं-

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्॥ ४/२॥

शब्दार्थ= जात्यन्तरपरिणामः= एक जाति से दूसरी जाति में बदल जाना (जात्यन्तर परिणाम कहा जाता है); **प्रकृत्यापूरात्**= प्रकृति के पूर्ण होने से होता है।

इस महत्त्वपूर्ण सूत्र के अर्थ व्यापक हैं। जीवात्मा के जीवन में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन को इससे समझा जा सकता है। हालाँकि यदि शाब्दिक अर्थ को लिया जाय तो जात्यन्तर परिणाम का तात्पर्य होगा जाति से अन्तर करने वाला परिणाम। जाति शब्द से जन्म और उससे मिलने वाली परिस्थितियों का बोध होता है। लेकिन यदि इस शब्दार्थ में सम्भावनाओं की व्यापकता पर विचार करें तो ये परिवर्तन-परिणाम चार रूपों में सामने आते हैं- इनमें पहला है १. परिस्थिति परिवर्तन, दूसरा है २. जन्म परिवर्तन, तीसरा है ३. प्रकृति परिवर्तन एवं चौथा है ४. योनि परिवर्तन।

योग साधना के परिप्रेक्ष्य और परिदृश्य में ये सभी चारों बिन्दु विचारणीय हैं। हम सभी जानते हैं कि परिवर्तन जीवन का नियम है। हम सभी अपने जीवन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में परिवर्तन के साक्षी बनते हैं और सहभागी भी। जीवन में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करने के बावजूद भी इनकी पृष्ठभूमि में होने वाले वास्तविक परिवर्तनों पर ठीक तरह से विचार नहीं कर पाते। स्थिति पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो जीवन जीवात्मा की वर्तमान स्थिति है। इसमें पहला और दृश्य परिवर्तन होता है परिस्थितियों में परिवर्तन। इस परिवर्तन में हमारे जीवन में शुभ अथवा अशुभ घटनाक्रम उत्पन्न होते हैं। जो एक निश्चित अवधि तक चलते हैं। इन घटनाक्रमों का यथार्थ कारण होता है हमारी चित्तभूमि में शुभ या अशुभ कर्मों एवं संस्कारों का उदय। इसका पहला प्रभाव हमारी मन:स्थिति पर पड़ता है, बाद में हमारी परिस्थिति परिवर्तित होने लगती है।

परिस्थिति में परिवर्तन की घटना बदलते हुए कालखण्ड के अनुसार सम्पूर्ण जीवन में चलती रहती है। चित्त भूमि में हुए आंशिक परिवर्तन हमारी परिस्थितियों में परिवर्तन का कारण बनते हैं। इन बदलती परिस्थितियों में हमारे कर्म, भावनाएँ एवं विचार तथा संकल्प को ऊर्जा चित्त में व्यापक परिवर्तन को जन्म देती है। जब चित्त की प्रकृति इनके अनुरूप परिवर्तन को जन्म देती है। जब चित्त की प्रकृति इनके अनुरूप परिवर्तित हो जाती है और वर्तमान शरीर का प्रारब्ध पूर्ण हो जाता है तो नए प्रारब्ध एवं चित्त की परिवर्तित दशा के अनुसार जीवात्मा को नया जन्म मिलता है। इस नए जन्म में नए ढंग की परिस्थितियाँ व नए ढंग के घटनाक्रम अपना आकार ग्रहण करते हैं।

इसके अगले क्रम में होता है प्रकृति परिवर्तन। इसमें भी कारण होते हैं हमारे शुभ व अशुभ कर्म, शुभ व अशुभ भाव एवं शुभ एवं अशुभ विचार। हमारा नकारात्मक एवं सकारात्मक दृष्टिकोण तथा हमारे द्वारा सम्पन्न की गयी तामसिक, राजसिक एवं सात्त्विक साधनाएँ इसका कारण बनती हैं। हम जो कर रहे हैं, जो सोच रहे हैं, जो भाव हमारे भीतर पनप रहे हैं, उनकी तीव्रता, निरन्तरता एवं दिशा के अनुरूप हमारी चित्तभूमि परिवर्तित हो जाती है। हमारा स्वभाव बदलता जाता है हमारी प्रकृति परिवर्तित होती जाती है। इस परिवर्तित प्रकृति के अनुरूप ही नरपशु, नर कीटक, नरपिशाच, नरमानव, महामानव एवं देवमानव बन जाते हैं। यह परिवर्तन हमारी प्रकृति में हुए तामसिक, राजसिक एवं सात्त्विक परिवर्तनों के अनुरूप होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस प्रकृति परिवर्तन के अनुरूप ही हमारे होने वाले जन्म की योनि का निर्धारण होता है। हम किस योनि में जन्म लेंगे, यह निर्धारण हमारी जन्मभूमि की व्यवस्था, अवस्था तथा हमारी प्रकृति में तम, रज अथवा सत् की सघनता के अनुरूप ही होता है। इसके अनुसार कीट-पतंगों की योनि में जन्म हो सकता है। कूकर-शूकर योनि भी प्राप्त हो सकती है। गाय, सिंह, हाथी आदि पशु योनि में जन्म हो सकता है। यह भी हो सकता है कि फिर से मनुष्य योनि में जन्म हो। प्रकृति के अनुरूप, यक्ष, गन्धर्व आदि उपदेवों की योनि में अथवा देवयोनि में जन्म प्राप्त हो सकता है। प्रकृति परिवर्तन के अनुसार- त्रिदेवों के पार्षद के रूप में, ब्रह्म लोक, विष्णु लोक अथवा शिवलोक में भी गमन हो सकता है।

यह जात्यन्तर परिणाम कब होता है ? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं **'प्रकृत्यापूरात्'** अर्थात् प्रकृति के पूरी होने पर। हमारी जीवनशैली में तम, रज, सत् के अनुरूप हमारी चित्त भूमि व्यवस्थित होती रहती है। हम अनजाने अथवा जान-बूझकर हमारी अपनी प्रकृति को परिवर्तित करते रहते हैं। हमारी हिंसा, लालसा, आक्रोश, वासनाएँ, चाहतें, हमारे संकल्प, चित्त भूमि को अपने अनुरूप गढ़ते-ढालते रहते हैं। हमारे शुभ कर्म, सकारात्मक सोच, हमारा तप, हमारे द्वारा सम्पन्न की जाने वाली साधनाएँ ये सभी प्रकृति को परिवर्तित करती हैं। इनकी निरन्तरता, इनकी तीव्रता, इनकी गतिशीलता के क्रम में जब हमारी प्रकृति में परिवर्तन पूर्ण हो जाते हैं, तो हमारे जीवन में जात्यान्तर परिणाम प्रस्तुत होते हैं अर्थात् हमारी प्रकृति के परिवर्तन के अनुरूप बनती है चित्तभूमि की व्यवस्था व अवस्था। और बाद में इसी के अनुरूप परिस्थिति परिवर्तन, जन्म परिवर्तन, प्रकृति परिवर्तन एवं योनि परिवर्तन का क्रम घटित होता है। इन सभी रूपों में हमारा ही किया हुआ हमारे सामने घटित एवं प्रत्यक्ष होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

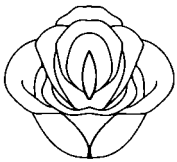

प्रकृति स्वयं पूरा करती है अपना लक्ष्य

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग में जीवन को रूपान्तरित करते हैं। बस आवश्यकता है इन्हें धैर्यपूर्वक, निरन्तरता में दीर्घकाल तक करते जाने की। जिन साधकों में अधीरता या उतावली है, जो कभी साधना करते हैं, कभी इसे छोड़ देते हैं, जो बार-बार पूँछते हैं अभी और कितना समय लगेगा ? उन्हें इस प्रक्रिया में निराश होना पड़ता है, चित्त की शुद्धि सहज, सरल काम नहीं है। इसमें हमारे जन्म-जन्मान्तर की कर्मराशि एवं संस्कारों का संचय है। इन सबके अपने-अपने सम्भावित परिणाम हैं। सबकी अपनी अवरोधक सामर्थ्य है। ऐसे में बहुत शीघ्रता करना और समय का निर्धारण करना भला किस प्रकार सम्भव है ? लेकिन इससे जुड़ा एक सत्य यह भी है कि साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती है। इसका निरर्थक होना सम्भव नहीं है। साधना शब्द को, साधना की प्रक्रिया को सुनिश्चित रूप से सफलता का पर्याय मानना चाहिए।

साधना का प्रभाव अविराम बना रहता है। इसके प्रभाव एक जीवन से दूसरे जीवन तक पहुँचते हैं। हाँ, जात्यन्तर परिणाम अर्थात् एक जीवन से दूसरे जीवन में परिवर्तन, एक योनि से दूसरी योनि में परिवर्तन तभी होता है, जब इसके अनुरूप प्रकृति स्वयं को पूर्ण कर लेती है। चित्त की अवस्था, चित्त में उभरे हुए कर्म और संस्कार की संरचना के अनुरूप हमारे जीवन के क्रम का और जन्म का निर्धारण होता है। जीवात्मा नित्य शुद्ध, नित्य भुक्त व नित्य प्रबुद्ध है। इसको

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कभी कोई विकार नहीं स्पर्श करते हैं। विकार और परिवर्तन तो चित्त में होते हैं। इसी के अनुरूप जीव को जीवन मिलता है। उसके जीवन की प्रकृति व परिस्थितियाँ निर्मित एवं निर्धारित होती हैं। उसे किस योनि में जन्म लेना है, यह भी तय होता है। इसलिएं यदि जीवन में उन्नत, उत्कृष्ट, परिष्कृत, सुसंस्कृत बनना है तो चित्त को भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

सूत्रकार ऋषि अपने अगले सूत्र में जीवन की प्रकृति को पूर्ण करने में निमित्त बनने वाली साधना के प्रयोजन को स्पष्ट करते हैं-

निमित्तप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्॥४/३॥

शब्दार्थ= **निमित्तम्**= निमित्त; **प्रकृतीनां**= प्रकृतियों को (विविध चित्त या विविध जीवन की प्रकृति को); **अप्रयोजकम्**= प्रायोजक नहीं है या इन्हें संचालित करने वाला नहीं है; **ततः**= उससे; **तु**= तो (केवल); **क्षेत्रिकवत्**= किसान की भाँति; **वरणभेदः**= रुकावट का छेदन किया जाता है।

भावार्थ= निमित्त बनने वाली योग साधना चित्त की प्रकृति का संचालन नहीं करती है। इससे तो बस केवल किसान की भाँति रुकावट को दूर किया जाता है।

इस सूत्र में महर्षि द्वारा कहे गए दोनों सूत्र स्वतः ही समाविष्ट हो गए हैं। इसलिए इन दोनों का उल्लेख करके इस सूत्र पर सम्यक् रीति से विचार किया जा सकता है। इससे पहले प्रथम सूत्र में कहा गया था- **जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः (४/१)** अर्थात् जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मंत्र से होने वाली, तप से होने वाली और समाधि से होने वाली- इस तरह से पाँच प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं। इसमें यह अर्थ भी स्वतः निहित है कि पूर्वजन्मों में की गयी साधना, औषधि और उसके साथ जुड़ी हुई तन्त्र व योग साधना की प्रक्रियाएँ, जिनका उल्लेख रसेश्वर तन्त्र में किया गया है, तप की प्रक्रिया व समाधि साधना से ये सिद्धियाँ प्रत्यक्ष होती हैं। अर्थात् इनके द्वारा व्यक्ति सिद्ध पुरुष हो जाता है। सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व और योगसिद्ध या सिद्ध पुरुष के व्यक्तित्व में इतना ज्यादा अन्तर होता है कि इसे रूपान्तरित जीवन या रूपान्तरित व्यक्तित्व कह सकते हैं।

इस रूपान्तरित व्यक्तित्व को महर्षि एक नया शब्द देते हैं, 'जात्यन्तर परिणाम'। अर्थात् यह परिवर्तन इतना बड़ा होता है कि इसे एक जाति का दूसरी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जाति में परिवर्तन कह सकते हैं और अपने इस सत्य को वह सूत्ररूप में प्रकट करते हैं- **जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात् (४/२)** अर्थात् यह व्यापक परिवर्तन- एक जाति को दूसरी जाति में रूपान्तरित करने वाला यह परिवर्तन तभी होता है, जब पहले सूत्र में कही गयी- जन्म, औषधि, मन्त्र, तप व समाधि की साधना प्रक्रियाएँ चित्त की प्रकृति को इस परिवर्तन के अनुरूप पूर्ण कर लेती हैं। जब साधना की विधियों एवं विज्ञान से जीवन एवं चित्त की नए जीवन के अनुरूप परिवर्तित व पूर्ण होती है, तब जीवन में व्यापक परिवर्तन अर्थात् सिद्ध पुरुष का जीवन सम्भव हो पाता है।

अब इससे अगले व वर्तमान सूत्र जिसकी व्याख्या यहाँ की जा रही है उसमें योग साधना एवं प्रकृति के सम्बन्धों को महर्षि और अधिक स्पष्ट करते हैं। इस सूत्र में वह साफ-साफ कहते हैं कि विगत दोनों सूत्रों से यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि योग साधना अथवा साधना की अन्य विधियाँ प्रकृति की प्रायोजक अथवा संचालक हैं। प्रकृति अपना प्रायोजन अथवा संचालन स्वयं करती है। त्रिगुणमयी प्रकृति में तीन गुण-तम, रज एवं सत् स्वतः ही समाविष्ट हैं। इसमें से जिस गुण को हम अपनी जीवनशैली में कर्म, चिन्तन एवं भावनाओं में महत्त्व देते हैं, उस गुण की सघनता हमारे जीवन में स्वतः ही हो जाती है।

यदि हमारे अपने जीवन में तमोगुण की प्रधानता है, फिर इस प्रधानता का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो ? भले ही हम तमोगुण प्रधान जीवन जी रहे हों अर्थात् हमारे जीवन में हिंसा, क्रोध अथवा आक्रामकता हो अथवा हम तमोगुण प्रधान साधनाएँ कर रहे हों जैसे कि हम प्रेत, पिशाच पूज रहे हैं, इन्हें पशुबलि आदि अर्पित कर रहे हों तो हमारा जीवन स्वतः ही तमोगुण प्रधान हो जाएगा। यही स्थिति अन्य दो गुणों की प्रधानता के बारे में है। यदि हमारे कर्म, चिन्तन एवं भाव में राजसिकता है, हम लालसाओं, वासनाओं एवं कामनाओं के पीछे भाग रहे हैं और इसके निमित्त देवताओं-देवियों की पूजा अर्चना कर रहे हैं तो हमारे जीवन में स्वतः ही रजोगुण की प्रधानता हो जाएगी।

इससे अलग यदि जीवन में सतोगुण की प्रधानता है, हमारे कर्म निष्काम हैं, हमारे भाव विचार सात्त्विक हैं, हमारी साधनाओं का स्वरूप सात्त्विक है, तो हमारा जीवन सात्त्विक या सतोगुण प्रधान हो जाएगा। इन सतोगुण प्रधान साधनाओं में हम ध्यान आदि प्रक्रियाओं को, ॐकार एवं गायत्री मंत्र के जप

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की गणना कर सकते हैं। ये साधनाएँ निमित्त बनती हैं, हमारी आन्तरिक एवं बाहरी प्रकृति में परिवर्तन की। इनके बारे में महर्षि स्पष्ट करते हैं, ये निमित्त बनने वाली योगसाधनाएँ प्रकृति का संचालन नहीं करती हैं, बस इसके अवरोध हटाती हैं अर्थात् अवरोध हटते ही व्यापक प्रकृति में से आपेक्षित या आमंत्रित गुण का प्रवाह स्वत: आने लगता है।

इसके लिए महर्षि किसान का उदाहरण देते हैं। किसान एक खेत से दूसरे खेत में अथवा एक क्यारी से दूसरी क्यारी में पानी ले जाने के लिए बस मेड़ के अवरोध हटाता है। किसान के फावड़ से अवरोध हटते ही जल का प्रवाह तो स्वत: ही वहाँ पहुँच जाता है। इस तरह किसान जल का संचालन नहीं करता है, बस जल के प्रवाह के अवरोध को हटा देता है। ठीक यही स्थिति योगी की है, वह अपनी साधना से अभीष्ट प्राप्ति में आने वाले अवरोधों को हटा देता है। शेष कार्य को प्रकृति स्वयं पूरा कर लेती है। वह प्रकृति का प्रायोजक नहीं है, बस प्रकृति के गुण प्रवाहों के अवरोध को हटाने वाला होता है।

इसीलिए साधना विज्ञान में, साधनाओं की प्रक्रियाओं एवं विधानों में इन प्रक्रियाओं व विधियों को पूरा करने के साथ उचित स्थान, वातावरण, वेश-विन्यास, वस्त्रों का रंग, पूजा सामग्री आदि को भी अपने ईष्ट एवं अभीष्ट के अनुरूप अपनाने के निर्देश दिए गए हैं। तामसिक भोजन एवं तामसिक वातावरण में रहकर सात्त्विक साधनाएँ सम्पन्न नहीं हो सकती हैं। इन्हें यदि जिस किसी तरह से सम्पन्न भी कर लिया जाय तो उचित व अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पाते। साधनाएँ वही सफल होती हैं जो ईष्ट व अभीष्ट प्रकृति के अवरोधों को हटा सकें। शेष कार्य तो प्रकृति स्वयं ही पूर्ण कर लेती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

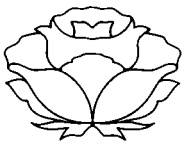

निर्माण चित्त से सम्भव है अनेक देह

चित्त की क्षमता व सामर्थ्य जीवन को क्षमतावान और समर्थ बनाती है। यदि चित्त अंधेरे से आक्रान्त है तो जीवन भी अशुभ व बुरी घटनाओं से आक्रान्त रहता है। इसी तरह यदि चित्त चंचल है तो जीवन स्वभावत: दुर्बल होता है। आत्मनिरीक्षण में संलग्न एवं आत्मदृष्टि सम्पन्न साधक इस सत्य को बड़ी सरलता से देख सकते हैं और समझ सकते हैं। जो इस सच्चाई को नहीं समझते, वे अपने जीवन के प्रत्येक कार्य के कारण की खोज में व्यर्थ भटकते और भ्रमित होते रहते हैं। जो सच्चे जिज्ञासु हैं, अनुभवी साधक हैं, जिनकी अन्तर्चेतना अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों में लीन है, वे यह जानते हैं कि चित्त की ऊर्जा ही जीवन की ऊर्जा के रूप में प्रकट होती है। इस ऊर्जा का स्वरूप जैसा भी नकारात्मक या सकारात्मक है, जीवन भी वैसा ही नकारात्मक अथवा सकारात्मक हो जाता है।

योग साधना चित्त की, जीवन की प्रकृति को संचालित करने वाली नहीं है। हाँ, इसमें अवरोधों को दूर किया जाता है। जैसे कि किसान अपने खेत में जल के प्रवाह का संचालन नहीं करता, बस मेड़ के द्वारा उत्पन्न होने वाले जल प्रवाह के अवरोध को फावड़े से दूर कर देता है। ठीक इसी तरह योग साधना द्वारा प्रकृति के कार्यों व प्रवाह के अवरोध दूर कर दिए जाते हैं। शेष प्रकृति न केवल अपना संचालन स्वयं करती है, बल्कि अपने कार्यों को पूरा भी स्वयं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करती है। इस सच्चाई को जानने वाला साधक अपनी साधना और साधना की उपलब्धियों के अभिमान से बचा रहता है।

इससे आगे ऋषि पतंजलि अपने अगले सूत्र में चित्त के सर्वथा अभूतपूर्व स्वरूप निर्माण चित्त के सत्य को उद्घाटित करते हैं-

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्॥ ४/४॥

शब्दार्थ= निर्माणचित्तानि= बनाए हुए चित्त; **अस्मितामात्रात्**= केवल अस्मिता से होते हैं।

भावार्थ= निर्माण चित्त केवल अस्मिता से बने होते हैं।

इस सूत्र की सम्यक् व्याख्या करने में प्राय: सभी व्याख्याकारों ने कृपणता बरती है। जबकि सिद्ध योगी अपनी इसी योग प्रक्रिया के बल पर स्वयं को एक साथ कई स्थानों में प्रकट करते हैं। इसी के बल पर वे अपने मूल स्थान में मूलस्वरूप से साधना करते हुए, समाधिलीन रहते हुए एक साथ कई जगहों पर जन्म ग्रहण करके अनेक जीवनों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को पूरा करते हैं। इस महत्त्वपूर्ण सूत्र की तार्किक व्याख्या के लिए सूत्रपदों के अर्थ पर बिचार करना चाहिए। **निर्मीयन्ते इति निर्माणानि; निर्माणानि च तानि चित्तानि, इति निर्माणचित्तानि**, जो बनाए गए हैं चित्त, वे निर्माण चित्त हैं। किस उपादान से बनाए गए? उत्तर है **अस्मिता मात्रात्**- अस्मितामात्र से। यहाँ अस्मिता पद से 'मात्रा च' प्रत्यय प्रमाण अर्थ में है। केवल अस्मिता उपादान से चित्त का निर्माण हुआ।

इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ चित्त शब्द का प्रयोग 'मनस्' अन्त:करण के लिए हुआ है; बुद्धि या महत्तत्व के लिए नहीं। महत्तत्व की रचना अहंकार से पहले हो चुकी होती है। अहंकार महत् के पश्चात् उत्पन्न होता है। इस सूत्र में अहंकार से चित्त की उत्पत्ति बताकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि चित्त शब्द मन के अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ सवाल यह भी है कि सिद्ध योगी क्या अपने पूर्व शरीर में कतिपय अवयवों के अपहार तथा आपेक्षित प्रकृति आपूर से एक समय में एक ही जात्यन्तर परिणाम करता है? अथवा अपने पूर्व देह के अतिरिक्त अन्य अनेक देहों का युगपत निर्माण कर लेता है?

सिद्धयोगी द्वारा एक काल में अनेक देहों के निर्माण की भावना ऋषि गौतम प्रणीत न्याय सूत्र (३/२/२०) के व्याख्याकार वात्स्यायन मुनि के एक सन्दर्भ से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ज्ञात होती है। यहाँ प्रसंग है **'योगी खलुऋद्धौ प्रादुर्भूतायां विकरणधर्मा निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरन्तराणि तेषुतेषु युगपज्ज्ञेया-नुपलभते। तच्चैतद्विभौ ज्ञातर्युपपद्यते नाणौ मनसीति।'** योगी निश्चित ही सिद्धियों के प्रादुर्भूत हो जाने पर इन्द्रिय व्यवस्था से बंधा नहीं रहता। वह इन्द्रियों सहित अन्य शरीरों का निर्माण कर उन-उन शरीरों में ज्ञातव्य पदार्थों को प्राप्त करता व जान लेता है। यह स्थिति के विभु होने पर सम्पन्न हो सकती है, अणु मन में नहीं। अत: ज्ञान विभु आत्मा का गुण है, अणु मन का नहीं। यहाँ यह तत्त्व स्पष्ट किया गया है कि अणुरूप मन एक समय एक ही शरीर में रह सकता है जबकि विभुरूप आत्मा एक साथ अनेक शरीरों में रह सकता है।

निर्माण चित्त के सत्य को महान योगी मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ की योगकथा के प्रसंग से और भी स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। योगीजनों के बीच यह बहुश्रुत व बहुप्रचलित है। कहते हैं कि एक बार योगी मत्स्येन्द्र किसी अति विशिष्ट साधना प्रयोजन से कामरूप देश चले गए। देवी कामाख्या के सिद्ध क्षेत्र में यह कामरूप देश स्त्री राज्य था। यहाँ नारियों का शासन था। यहाँ की महारानी ललिता योगसिद्ध नारी थी। उनकी योगविभूतियाँ योगशक्तियाँ व योगसिद्धियाँ अलौकिक व अतुलनीय थीं। यहाँ कोई बाहरी पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता था। योगी मत्स्येन्द्रनाथ अपने योगबल से वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपने योगबल, ज्ञानबल से योगसिद्ध ललिता के दर्प को चूर्ण किया।

उनसे पराजित होकर महारानी ललिता ने स्वयं का समर्पण उनके चरणों में कर दिया। मत्स्येन्द्रनाथ भी प्रसन्नता से रानी ललिता के साथ रहने लगे। इधर योगियों व साधकों में प्रवाद फैल गया कि महान् योगी मत्स्येन्द्रनाथ योगपथ से भ्रष्ट हो गए हैं। अब वह स्त्रियों के बीच उलझ गए हैं। उनमें अब कोई योगशक्ति नहीं रही। यह प्रवाद धीरे-धीरे समाज में प्रसारित होने लगा। सभी मत्स्येन्द्रनाथ की निन्दा करने लगे। गोरखनाथ अपने महान् गुरु की निन्दा सहन न कर सके। उन्होंने सोचा कि वह स्वयं कामरूप देश जाएँगे और अपने गुरु का उद्धार करेंगे।

अपने संकल्प के अनुसार-गोरखनाथ अनेक बाधाओं व विघ्नों को पार करते हुए कामरूप देश पहुँच गए। इस स्त्री राज्य में पहुँचने के लिए उन्हें स्त्री वेश धारण करना पड़ा। स्त्री वेश में वह सभी बाधाओं को पार करते हुए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अन्ततोगत्वा वहाँ पहुँच गए, जहाँ मत्स्येन्द्रनाथ महारानी ललिता के साथ सभा में बैठे थे। अब तक उन दोनों के एक पुत्र भी हो चुका था- मीननाथ। गोरखनाथ इस सभा में बैठकर मृदंग बजाने लगे। स्त्रीवेश धारी गोरखनाथ के मृदंगवादन से एक ही स्वर निकल रहा था- जाग मच्छन्दर गोरख आया। गोरखनाथ के इन स्वरों को मत्स्येन्द्रनाथ ने पहचान लिया। उन्होंने महारानी ललिता से कहा- ''देवी! अब हमारे यहाँ से प्रस्थान करने का समय हो गया है। मेरा शिष्य गोरख मुझे लेने आ पहुँचा है।''

महारानी ललिता ने मत्स्येन्द्रनाथ की आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें विदा कर दिया। कामरूप देश से निकलकर भी गोरखनाथ के मन में यह क्षोभ था कि उनके महान गुरु की संसार में घोर निन्दा हो रही है। इसका सामना वह कैसे कर सकेंगे? गोरखनाथ के मन की चिन्ता को समझ कर मत्स्येन्द्रनाथ उन्हें एक अति दुर्गम क्षेत्र में एक गुफा के पास ले गए। मत्स्येन्द्रनाथ के कहने पर गोरखनाथ ने गुफा के द्वार से शिला हटायी। शिला हटाने पर जो दृश्य देखा तो वह घोर आश्चर्य में पड़ गए। यहाँ तो स्वयं मत्स्येन्दु समाधि में लीन थे। गोरखनाथ के पास पहुँचने पर समाधिलीन मत्स्येन्द्रनाथ ने आँखें खोलते हुए कहा- ''आश्चर्य न करो वत्स! मेरा मूलस्वरूप यहीं पर साधनारत है। कामरूप देश जाने वाला शरीर मेरे निर्माण चित्त द्वारा उपजा है। निर्माण चित्त के द्वारा मैं यहीं बैठे हुए अनेक स्थानों पर एक साथ जन्म ले सकता हूँ, जीवन जी सकता हूँ, स्वयं को एक-साथ अनेक देह में बिना जन्म लिए प्रकट कर सकता हूँ।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने कामरूप देश जाने वाले शरीर को स्वयं के मूलस्वरूप में लीन कर लिया। गोरखनाथ निर्माणचित्त के इस विज्ञान को समझकर गुरुमहिमा को जानकर नतमस्तक हो गए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनेक चित्त का निर्माण व नियंत्रण कर सकता है- योगी

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग में लीन योग साधक अपने जीवन में अनेक आश्चर्यों को न केवल स्वयं अनुभव करता है, बल्कि औरों को कई आश्चर्यचकित करने वाली अनुभूतियाँ कराने में सक्षम होता है। सामान्य जीवन देह व इन्द्रियों की सीमाओं-मर्यादाओं में बंधा होता है। इसलिए इसमें जो घटित होता है, जो अनुभूतियाँ होती हैं, वह इसी की सीमाओं में होती हैं। औरों की तरह जीवन में बंधे बंधाए नियमों, मानकों व मानदण्डों के अनुसार सब कुछ यथावत चलता रहता है। इससे भिन्न न तो कुछ होता है और न ही होने की सम्भावना होती है। परन्तु योग के प्रयोग के साथ इस स्थिति में परिवर्तन आता है। परिष्कार के साथ भिन्नता और व्यापकता भी आती है। देह व इन्द्रियों से पार व परे के अनेकों दृश्य उभरते हैं। अनेकों आश्चर्य साकार होने लगते हैं। व्यक्ति समष्टि के साथ तदाकार व एकाकार होने लगता है।

योगी अपनी उच्चस्तरीय योग साधना में निर्माण चित्त को विनिर्मित करने में सक्षम होता है। ये निर्माण चित्त केवल अस्मिता से बने होते हैं। अर्थात् इनमें आत्मसत्ता की कोई भागीदारी नहीं होती है। इनके द्वारा वह अपने आप को एक साथ कई स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर में प्रकट कर सकता है। यह प्रकटीकरण उसके अपने उद्देश्य के अनुसार होता है। इच्छा होने पर वह एक साथ कई स्थानों पर जन्म भी ले सकता है और अलग-अलग ढंग से अपने कार्यों में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संलग्न रह सकता है। निर्माण चित्त द्वारा विनिर्मित उसके ये स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर उसके मूल स्वरूप अथवा मूल चित्त से सम्बद्ध होते हैं। हालाँकि इन सभी पर स्थिति व परिस्थिति के अनुसार प्रकृति के नियम व मर्यादाएँ क्रियाशील होती है। जिन्हें अपनी योगशक्ति से नियंत्रित व समायोजित करता रहता है।

इससे आगे योग ऋषि पतंजलि अगले सूत्र में इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं-

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम्॥ ४/५॥

शब्दार्थ= **अनेकेषाम्**= अनेक चित्तों को; **प्रवृत्तिभेदे** = नाना प्रकार की प्रवृत्तियों में; **प्रयोजकम्**= नियुक्त करने वाला; **एकम्**=एक; **चित्तम्**= चित्त (होता) है।

भावार्थ= इस योग साधना की प्रक्रिया में जो अनेक प्रकार के निर्माण चित्त बनाए जाते हैं, उन सभी को अलग-अलग कार्यों में नियुक्त करने वाला एक चित्त अर्थात् योगी का अपना मूल चित्त होता है।

यह सूत्र विशेष है। इसका अर्थ समझने के लिए हम सबको परम पूज्य गुरुदेव की सूक्ष्मीकरण साधना का स्मरण करना पड़ेगा। यह साधना उन्होंने वर्ष १९८४, १९८५ एवं १९८६ के तीन वर्षों में सम्पन्न की थी। इस सूक्ष्मीकरण की चर्चा उन्होंने अपनी आत्मकथा हमारी वसीयत और विरासत तथा अखण्ड ज्योति पत्रिका के तत्कालीन अंकों में की थी। अपने पाठकों को इस क्रम में स्मरण होगा कि इसके लिए उपयुक्त मार्गदर्शन हेतु उन्होंने सूक्ष्मशरीर से हिमालय यात्रा सम्पन्न की थी। इसी के साथ वह समूचे साधनाकाल में सम्पूर्ण रूप से एकान्त व मौन रहे। ये तीन वर्ष उनके लिए अतिकठिन साधना के थे। इस अवधि में उन्होंने अपने मूल स्वरूप को या मूल चित्त को पाँच रूपों में यह निर्माण चित्तों में विभक्त किया था। इन्हें उन्होंने अपने पाँच वीरभद्र के रूप में प्रकट और परिभाषित किया।

इस तीन वर्षीय समर्थ साधना के उन्होंने दो उद्देश्य घोषित किए थे। इनमें से पहला उद्देश्य था-१. विश्व कुण्डलिनी जागरण एवं २. पाँच वीरभद्रों का निर्माण या उत्पादन। ये पाँच वीरभद्र उनके पाँच निर्माण चित्त थे। जिनमें से प्रत्येक का प्रयोजन अलग था और ये सभी पाँचों उनके अपने मूल चित्त द्वारा नियंत्रित और नियोजित होते थे। इन दोनों महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के लिए उन्होंने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गायत्री महाविद्या की अति विशिष्ट सावित्री साधना सम्पन्न की थी। इसके बारे में उन्होंने लिखा था- 'गायत्री ब्रह्मविद्या है, इसे आत्मिकी भी कह सकते हैं। सावित्री आत्मभौतिक है, आती तो वह आत्मविज्ञान के अन्तर्गत ही है, पर उससे भौतिक लाभों का उपार्जन और सांसारिक संकटों का निवारण ही हो सकता है'। इसके बारे में उन्होंने यह भी कहा था कि यह आत्मिक चेतना और सविता चेतना का तादात्म्य बनाने वाला आधार सावित्री साधना है।

इसके बारे में उन्होंने उन दिनों लिखा था- 'सावित्री विश्वव्यापी है। उसके प्रभाव से भूमण्डल का सम्पूर्ण क्षेत्र एवं प्राणी समुदाय का समूचा वर्ग प्रभावित हो उठता है। वह जन-जन के मन-मन में प्रेरित प्रेरणा की तरंगे उत्पन्न कर सकती है। यह अनर्थ संजोने वाले को टक्कर मारकर नीचे गिरा सकती है और साथ ही दिशा भूले लोगों को सही रास्ते पर उसी प्रकार चला सकती है, जिस प्रकार झुण्ड से बाहर जिधर-तिधर भागने वाली भेड़ों को ग्वाला डंडा दिखाकर सही रास्ते पर ले आता है। इसी समर्थ साधना के समय और इसी प्रक्रिया के द्वारा उन्होंने पाँच निर्माण चित्त विनिर्मित किए। इन सभी को उन्होंने पाँच वीरभद्र नाम दिया।'

महर्षि पतंजलि अपने इस सूत्र में इनमें से प्रत्येक के जिस प्रवृत्ति भेद अथवा अलग कार्य की बात करते हैं, उसे भी पूज्य गुरुदेव ने इस प्रक्रिया में स्पष्ट रेखांकित किया था। इन सभी पाँचों के उन्होंने पाँच अलग-अलग कार्य गिनाए थे। उन्होंने इन सभी पाँच निर्माण चित्त के रूप में अपने पाँचों वीरभद्र के बारे में लिखा था, सूक्ष्मीकरण के महाप्रयोग में से एक वीरभद्र विचार संशोधन में लगेगा। सूक्ष्मीकरण द्वारा उत्पन्न दूसरे वीरभद्र के लिए यही काम सौंपा गया है कि नवनिर्माण के लिए जितने प्रचुर साधनों की आवश्यकता है उन्हें कहीं से भी, किसी भी कीमत पर जुटाया जाना चाहिए। इतने साधन जो जुटा सके, सो कितना समर्थ होगा, यह अनुमान लगाने में किसी को चूक नहीं करना चाहिए।

उन्होंने अपने तीसरे वीरभद्र के बारे में लिखा था कि यह तीसरा वीरभद्र दुरात्माओं के लिए भय का वातावरण उत्पन्न करेगा। सूक्ष्मीकरण से उत्पन्न चौथे वीरभद्र को प्रस्तुत एवं भावी प्रज्ञा परिजनों की दृष्टि से अधिक समर्थ बनाने के लिए सुरक्षित छोड़ दिया गया है। अब रही पाँचवे की बात तो इसके बारे में उन्होंने लिखा कि सूक्ष्मीकरण से उत्पन्न चार वीरभद्रों को जो असाधारण काम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सौंपे गए हैं, उनके लिए खुराक कहाँ से आए? इसके निमित्त एक पाँचवा वीरभद्र विशुद्ध तपश्चर्या में ही निरत रहेगा। इन सभी पाँचों के नियंत्रित व सुनियोजित करने की व्यवस्था के लिए उनका अपना मूल स्वरूप या मूल चित्त था।

इस तरह के तात्पर्य को समझा जा सकता है। वैसे ही कालभेद से जात्यन्तर परिणत देहों में निर्माणचित्त जब ऐसी प्रवृत्ति की ओर सिद्धयोगी को आकृष्ट करने की स्थिति में आता है, जो योगमार्ग अथवा अध्यात्म मार्ग से योगी को दूर हटा ले जाए, तो उस प्रवृत्ति को रोकने में योगी का मुख्य चित्त प्रयोजक होता है। उन-उन विभिन्न देहों में निर्माण चित्तों की अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने में शुद्ध चित्त प्रयोजक होता है। वह निर्माण चित्त को कुमार्ग पर जाने से रोकता है, उसे उद्देश्य के लिए समर्पित रखता है, वह मुख्य शुद्ध चित्त जो सर्गादि काल से आत्मा के साथ सम्बद्ध है, निर्माण चित्तों को अध्यात्म विरोधी मार्ग पर जाने से रोके रखता है, जिससे योगी आत्मा पथ भ्रष्ट होने से बची रहती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

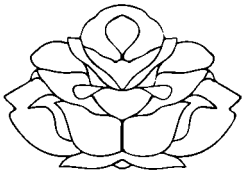

ध्यान से होती है सम्पूर्ण चित्त शुद्धि

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग परिष्कार के लिए हैं। यही योग साधना का स्वाभाविक उद्देश्य है। शक्ति के लिए, सिद्धि के लिए जो योग के प्रयोग करते हैं, वे योग के अर्थ व मर्म को नहीं समझते। योग का ध्येय चमत्कार से नहीं, बल्कि परिष्कार है। जो चमत्कार के फेर में पड़ा, समझो कि वह योग के ध्येय से वंचित हो गया। चमत्कार की अलौकिकताओं से योग कभी भी परिभाषित नहीं होता। योग का परिचय एवं योग की परिभाषा तो परिष्कार है। इस परिष्कार की विधियाँ, इसके विधान ही वास्तविक अर्थों में योग विज्ञान हैं। योग की परिष्कार साधना जब जीवन की विविध कक्षाओं को उत्तीर्ण करते हुए चित्त को परिष्कृत करती है, तब उसमें ज्ञान का, बोध का उदय होता है। कर्मशून्य, संस्कार शून्य व वासना शून्य चित्त ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होता है। उसमें जीवन का सत्य उद्‌भासित होता है।

निर्माण चित्त की प्रक्रिया द्वारा विनिर्मित अनेक चित्तों को नाना प्रकार की प्रवृत्तियों में नियुक्त करने वाला केवल एक चित्त होता है। इन अनेक चित्तों का निर्माण योगी अपने कार्य के अनुरूप या उद्देश्य के अनुरूप करता है। इस कार्य के लिए ये सभी चित्त अलग-अलग तरह के स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर धारण करते हैं। इन सभी की क्रियाशीलता अथवा सक्रियता अपने-अपने तल पर प्रकृति के नियमों व मर्यादाओं के अनुरूप होती है। अर्थात् निर्माण चित्त स्थूल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

या सूक्ष्म जगत में जहाँ भी सक्रिय है, वह सक्रियता वहाँ के प्राकृतिक नियमों अथवा प्रकृति की विधि-व्यवस्था के अनुरूप होती है। इनमें से किसी में कोई भटकाव न हो, इसलिए इन सबका नियंत्रण व सुनियोजन योगी के अपने मुख्य चित्त द्वारा होता रहता है।

इसके बारे में योगऋषि कहते हैं-

तत्र ध्यानजमनाशयम्॥ ४/६॥

शब्दार्थ= **तत्र**=उनमें से; **ध्यानजम्**= जो ध्यान जनित चित्त होता है वह; **अनाशयम्**= कर्म-संस्कारों से रहित होता है।

भावार्थ= उनमें से जो ध्यान जनित चित्त होता है, वह कर्म-संस्कारों से रहित होता है।

इसके पहले कहे गए सूत्रों में निर्माण चित्त की प्रक्रिया बतायी गयी थी। इस प्रकरण में पहले बताया गया था कि जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि इन पाँच कारणों से शरीर, इन्द्रिय और चित्त का विलक्षण परिणाम होता है। ये सभी विलक्षण शक्तियों व सिद्धियों से आपूरित हो जाते हैं। शरीर शक्ति सम्पन्न हो, सिद्धि सम्पन्न हो, इन्द्रियों में शक्ति या सिद्धि की विलक्षणता हो, तो उनसे आश्चर्यकारी कार्य सम्पन्न किए जा सकते हैं। इसी तरह यदि चित्त में विलक्षण शक्तियाँ अथवा सिद्धियाँ हैं तो अनेकों आश्चर्यों को साकार व साक्षात् किया जा सकता है। लेकिन इनमें से किसी से भी कैवल्य ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता। इसके लिए तो अनाशय अर्थात् कर्म-संस्कारों से मुक्त चित्त चाहिए, जो केवल ध्यान-समाधि से ही सम्भव है।

योग साधना में योग साधक के लिए परिष्कार प्रधान है और यह परिष्कार भी ऐसा हो जो चित्त को सम्पूर्ण रूप से परिष्कृत कर दे, उसे कर्म व संस्कारों से मुक्त बना दे। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी कक्षाओं में, आध्यात्मिक वार्ताओं व संगोष्ठियों में इस सत्य को अनेक बार, अनेक तरह से कहा करते थे। उनका कहना था कि अनेक बार सिद्ध योगी जब लोकसंग्रह के लिए धरती पर जन्म लेते हैं तो उन्हें कार्य के उद्देश्य से कई बार विचित्र परिस्थितियों व अवांछित कर्मों का सामना करना पड़ता है। इनसे घिरना पड़ता है और तब ये इनसे मुक्त होने के लिए स्वयं को कठिन कष्टों में डाल लेते हैं। अनेक तरह की बीमारियाँ, परेशानियाँ व पीड़ा तथा अपमान को सहन करते हैं। इन सबका

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उद्देश्य बस यही होता है कि कार्य की परिस्थितिवश जो कर्म अथवा संस्कार बन पड़े हैं, उनसे छुटकारा पा लिया जाय।

एक प्रसंग में उन्होंने कर्म-संस्कार से छुटकारा पाने के लिए विधि व विज्ञान को समझाया था। इस चर्चा में उन्होंने यह भी बताया किसिद्ध योगी व अवतारी महामानव हमेशा हर स्थिति में जाग्रत व सजग होते हैं। वे प्रकृति के, जीवन के नियमों को भलीभाँति समझते हैं। इसलिए वे कभी भूलकर भी भूल नहीं करते। यदि कभी किसी कार्यवश कोई त्रुटि या भूल बन पड़ी तो तत्काल बिना किसी विलम्ब के उसका परिमार्जन कर डालते हैं। लेकिन सामान्यजनों को, साधारण योग साधकों को कर्म-संस्कार के परिष्कार के लिए कठिन प्रयास करने पड़ते हैं। ये प्रयास प्रकृति के नियमों व कर्म की व्यवस्था के अनुरूप करने पड़ते हैं।

कर्म की विधि व्यवस्था के अनुसार तीन प्रकार के कर्म होते हैं। इनमें से पहले हैं- १. क्रियमाण कर्म यानि कि वे कर्म जिन्हें हम वर्तमान समय में कर रहे हैं। २. प्रारब्ध कर्म अर्थात् वे कर्म जिन्हें हम बीते समय में या बीते हुए जन्मों में कर चुके हैं और काल ने जिनका परिपाक कर दिया है। जिन्हें भोगने के लिए हमें हमारा वर्तमान जन्म एवं वर्तमान जीवन मिला है। अब तीसरे हैं, ३. संचित कर्म, जिन्हें हमने बीते समय अथवा बीते जन्मों में किया तो है, पर काल ने अभी इनका परिपाक नहीं किया है। ये अभी अपना परिणाम देने के लिए तैयार नहीं हैं।

इन तीनों को क्षीण करने के लिए तीन तरह की व्यवस्थाएँ हैं। इनमें से पहले प्रकार के कर्म, जो हम अपने वर्तमान समय व वर्तमान जीवन में सम्पन्न कर रहे हैं और सम्पन्न करते जा रहे हैं। वे कर्मबीज के रूप में अथवा संस्कार राशि के रूप में हमारे चित्त में संचित न हों, इसके लिए अनासक्ति या निष्कामता आवश्यक होती है। जब किसी कर्म के किसी भी रूप में हम अनासक्त या निष्काम होते हैं तो उनका संचय कर्मबीजों के रूप में अथवा संस्कार राशि में नहीं होता है। कर्मों को यदि भगवद्अर्पित भावना से भी किया जाय तो भी कर्म भविष्य के बन्धन का कारण नहीं बनते।

दूसरे तरह के कर्म जो प्रारब्ध के रूप में परिपक्व हो चुके हैं। इन्हें भोगना अनिवार्य हो जाता है। ज्ञान अथवा योग विधि से इन्हें क्षीण नहीं किया जा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सकता। ऐसे कर्मों को न केवल सामान्य जन, बल्कि ज्ञानी व योगीजनों को भी भोगना पड़ता है। हाँ, तीव्र तप से इनकी तीक्ष्णता व तीव्रता कम की जा सकती है। चन्द्रायण या क्रच्छ तप तथा महामृत्युञ्जय एवं गायत्री तंत्र की विधि पूर्ण साधना से कठोर प्रारब्ध को भी कोमल बनाया जा सकता है। इसीलिए योग साधक के जीवन में तप अनिवार्य है, ताकि प्रारब्ध कर्म, योग साधना में बाधा न बन सके।

तीसरे तरह के संचित कर्म का, न तो निष्कामता इनका निवारण होता है और न ही कठिन तप साधना से। इनका निवारण, निराकरण तो बस ध्यान से ही सम्भव है। हालाँकि यह कार्य प्रारब्ध के क्षीण होने के पश्चात् ही किया जाना सम्भव है। कई बार योगी स्थूल शरीर से प्रारब्ध क्षीण कर लेने पर इसे सूक्ष्म शरीर में सम्पन्न कर लेते हैं। ध्यान साधना से, समाधि के अभ्यास से संचित कर्मों का कोष रिक्त हो जाता है और चित्त अनाशय हो जाता है। फिर ऐसे चित्त में स्वभावतः ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। इससे योग जनित अन्य कार्य भी किए जा सकते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

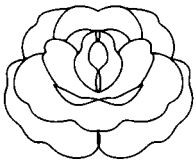

कर्मों की गति से पार है योगी

योग साधक की जीवन शैली का सम्बन्ध व्यावहारिक व बाहरी जीवन की अपेक्षा उसके आन्तरिक जीवन एवं अन्तर्चेतना से कहीं अधिक होता है। वह अपने सामान्य जीवन में सामान्य कर्मों को करता हुआ भी अपने आन्तरिक जीवन एवं अन्तर्चेतना को उत्तरोत्तर निर्भार करता है, इन्हें प्रकाशित करता है। उसके जीवन की विशेषताएँ उसके कर्मों के स्वरूप में नहीं, उसकी भावनाओं, विचारों, वृत्तियों व उसके दृष्टिकोण में होती हैं। वह महत्त्वाकांक्षाओं के साथ नहीं, महानता की आकांक्षा के साथ जीता है। उसकी जीवन शैली के परिणाम उसके जीवन में वैभव के रूप में न प्रकट होकर विभूतियों के रूप में प्रकट होते हैं। संसार में रहकर सांसारिक जीवन यापन करते हुए भी उसके भाव, विचार व वृत्तियाँ ब्राह्मी चेतना के साथ तदाकार होती हैं।

योगी का चित्त ध्यान की प्रक्रिया से अनाशय होता है। परिष्कृत चित्त अथवा यूँ कहें कि चित्त की शुद्धतम अवस्था योग, योगी व उसकी साधना के सम्यक् स्वरूप का परिचय कराती है। यहाँ तक कि निर्माण चित्त की प्रक्रिया द्वारा जब वह अनेक चित्त एवं इसके द्वारा स्थूल व सूक्ष्म में अनेक जीवन का सृजन करता है। तब भी उसके प्रत्येक जीवन में यह सत्य यथावत रहता है। उसके भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के अनुरूप उसके द्वारा विनिर्मित प्रत्येक चित्त व उससे संलग्न उसके जीवन की संरचना तो अलग-अलग रहती है, परन्तु उसके

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आन्तरिक जीवन व आन्तरिक चेतना की स्थिति में बदलाव नहीं आता है। ध्यान जनित उसका शुद्धतम चित्त जो उसका मूल स्वरूप होता है, उसके द्वारा अनेक प्रकार के निर्माण चित्त नियन्त्रित व सुनियोजित किए जाते रहते हैं। किसी भी जीवन में भटकन की सम्भावना को निरस्त किया जाता रहता है।

यह विशिष्टता योगी के कर्म में निहित होती है। इसे महर्षि अपने अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्॥ ४/७॥

शब्दार्थ= **योगिनः**= योगी के; **कर्म**= कर्म; **अशुक्लाकृष्णम्**= अशुक्ल और अकृष्ण होते हैं (तथा); **इतरेषाम्**= दूसरों के; **त्रिविधम्**= तीन प्रकार के होते हैं।

भावार्थ= योगीजनों के कर्म अशुक्ल-अकृष्ण अर्थात् पुण्य-पाप से रहित होते हैं। जबकि साधारण मनुष्यों के कर्म तीन प्रकार के अर्थात् १. शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्य कर्म, २. कृष्ण कर्म अर्थात् पाप कर्म एवं ३. शुक्ल कृष्ण कर्म अर्थात् पुण्य व पाप मिश्रित कर्म होते हैं।

इस सूत्र में योगऋषि पतंजलि ने कर्मों के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसमें बताया गया है कि सामान्य क्रम में कर्म तीन तरह के होते हैं। इनमें से पहला प्रकार है- १. शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्य कर्म। इन कर्मों का फल जीव को अपने जीवन में सुख भोग के रूप में प्राप्त होता है। इसके बाद दूसरे प्रकार के कर्म हैं- २. कृष्ण कर्म अर्थात् पाप कर्म। इन कर्मों के फल जीव को अपने जीवन में दुःख भोग के रूप में मिलता है। तीसरे प्रकार के कर्म हैं- ३. शुक्ल-कृष्ण कर्म- ये ऐसे कर्म हैं जिनमें पुण्य और पाप मिला हुआ होता है। इनके फल के रूप में सुख और दुःख मिश्रित रूप में प्राप्त होते हैं। इन तीन प्रकार के कर्मों से सर्वथा भिन्न योगीजनों के कर्म होते हैं। इनका स्वरूप अशुक्ल व अकृष्ण होता है। इन कर्मों का कोई भोग नहीं होता। क्योंकि उनका चित्त संस्कार शून्य व वासना शून्य होता है। इसलिए योगीजन निष्काम, अनासक्त व निर्लेप भाव में जीते हैं। कर्म करते हुए भी वह सर्वथा सन्तुष्ट, संतृप्त व पूर्णकाम होते हैं।

योगी जनों के जीवन के इस स्वरूप को व्यक्त करने वाली योग वाशिष्ठ की एक कथा है। योग वाशिष्ठ में इसे आकाशज की कथा के रूप में कहा गया है। इस कथा को महर्षि वशिष्ठ ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को सुनाया। इस कथा में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कहा गया है कि आकाशज नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाश से बिना किसी पूर्वकर्म लिए, लीला मात्र से हुई थी। उत्पन्न होकर वह सदा ही अपने चिदाकाश स्वरूप में स्थित रहता था। किसी विषय के लिए उसके हृदय में वासना नहीं थी और न ही वह किसी कामना से प्रेरित होकर कोई कर्म करता था। इस प्रकार का जीवन बिताते हुए उसको बहुत समय व्यतीत हो गया। न तो उसने सुख भोग प्राप्त किए और न ही उसे दुःख की अनुभूति हुई। यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी नहीं हुई।

जब बहुत समय बीत गया तो मृत्यु को ख्याल आया कि यह ब्राह्मण बहुत समय से जीवित है; अभी तक मरा नहीं, इसको अब मारना चाहिए। मृत्यु ने उसको मारने का बारम्बार प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रही। अपने को अपने नित्य के धर्म का पालन करने में इतनी असमर्थ पाकर मौत को आश्चर्य, खेद और क्रोध सभी कुछ हुआ। जब अपनी असफलता का कारण मृत्यु की समझ में न आया, तो वह अपने स्वामी यमराज के पास पहुँची और उनके प्रति अपने विस्मय और अपनी असफलता का हाल कहा। उसको सुनकर यमराज बोले- ''हे मृत्यु! तू केवल निमित्त मात्र है, तू किसी को भी नहीं मार सकती, केवल प्राणियों के कर्म ही उनको मारते हैं। जिसने वासनात्मक कार्य किए हैं, वही तुम्हारा ग्रास बनता है। यदि तुम्हें आकाशज ब्राह्मण को मारना है तो जाकर उसके कर्मों का सूक्ष्म- अति सूक्ष्म निरीक्षण करो।''

यदि तुमको उसका कोई भी कामनापूर्वक किया हुआ कर्म मिल गया तो तुम उसे मारने में समर्थ हो सकोगी अन्यथा नहीं। यमराज की बात सुनकर मृत्यु सूक्ष्म रूप से आकाशज ब्राह्मण के साथ रहने लगी। अब उसका एक ही काम था आकाशज के कर्मों का सूक्ष्म व अति सूक्ष्म निरीक्षण करना।उसने आकाशज के वर्तमान जीवन का पूर्व जीवन का भलीभाँति निरीक्षण किया। किन्तु उसे आकाशज ब्राह्मण के जीवन में एक भी वासनात्मक कर्म नहीं मिला। मृत्यु ने उसके भाव, विचार व वृत्तियों की पड़ताल की। किन्तु वहाँ भी उसे सब प्रकार से निष्कामता व अनासक्ति मिली। वह ब्राह्मण सदा-सर्वदा ब्राह्मी चेतना में उपस्थित रहता था।

उसकी स्थिति सदा आत्मभाव में रहती थी। किसी विषय के प्रति उसकी कोई वासना नहीं थी। उसके चित्त में ऐसी कोई भी कामना नहीं थी, जिसकी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सिद्धि के लिए वह कर्म करता हो। उसके सारे कर्म बस स्वभावप्रेरित थे। वह संसार की किसी वस्तु और प्राणी को अपने से भिन्न और बाहर नहीं समझता था। उसको अपनी क्षण भंगुर देह और मन के साथ आत्मभाव का अभिमान नहीं होता था। यह सब देखकर मृत्यु की समझ में आ गया कि आकाशज का जीवन क्यों उसकी पकड़ व पहुँच से बाहर है। सब कुछ देख-समझकर मृत्यु यमराज के पास गयी और उनसे बोली कि जो आप कहते थे वही सही निकला। मैं किसी को भी नहीं मार सकती। मारने वाले तो प्राणियों के कर्म हैं। इन कर्मों के कारण ही मनुष्य सुख का, दुःख का एवं मृत्यु का अनुभव करता है। योगीजन अपने आत्मभाव से स्थित रहकर कर्म करते हैं। किसी भी अवस्था में उनकी यह स्थिति परिवर्तित नहीं होती। इसीलिए उनके लिए महर्षि ने अपने सूत्र में कहा है कि योगियों के कर्म अशुक्ल-अकृष्ण होते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

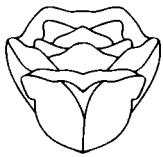

गहरे हैं कर्म के रहस्य

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग कर्म की सूक्ष्मताओं को प्रकट करते हैं। इनसे कर्म के तत्त्व, सत्य और सिद्धान्त का स्पष्ट बोध होता है। इच्छा, संकल्प व क्रिया का सम्मिलन कर्म को उसका स्वरूप प्रदान करता है। इन तीनों में निहित शक्ति के अनुपात से अनुरूप कर्म समर्थ अथवा प्रभावशाली बनता है। चित्त की वर्तमान अवस्था में जो संस्कार अथवा कर्मबीज सक्रिय हैं, उसी के अनुसार मन में भावना, विचार व वासना प्रकट होती है। ये मिलकर इच्छा का निर्माण करते हैं। यही इच्छा हमें कुछ करने के लिए प्रेरित करती है। हमारी यह इच्छा मन की एकाग्रता, मनोबल व प्राणबल से मिलकर संकल्प में परिवर्तित होती है। इस संकल्प की शक्ति के अनुरूप ही हमारा कर्म, शक्ति सम्पन्न व समर्थ बनता है। इसी के अनुपातिक रूप में उसका प्राकट्य होता है।

योगीजन अपने जीवन व संसार के प्रति अनासक्त व निष्काम होते हैं। उनका चित्त कामनाओं से अशान्त व आक्रान्त नहीं होता है। वासना शून्य चित्त के कारण उनमें सहज अनासक्ति होती है। इसलिए योगीजन अनासक्त, निष्काम व भगवद्अर्पित कर्म करते हैं। उनमें कर्म इसीलिए शुभ-अशुभ प्रभाव से मुक्त होते हैं। चित्त में न तो उनके कर्म बीज संचित होते हैं और न ही संस्कार राशि का संचय होता है। इसी कारण कर्म करते रहने पर भी योगीजनों का चित्त स्वाभाविक रूप से शुद्ध और निर्मल होता है। जबकि सामान्य जनों की यह

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थिति नहीं होती। उनमें आसक्ति व कामनाएँ दोनों होती हैं। अपनी आसक्ति व कामनाओं की सकारात्मकता व नकारात्मकता के अनुरूप ये पुण्य कर्म, पाप कर्म अथवा पुण्य-पाप से मिले जुले ये तीन प्रकार के कर्म करते हैं। इसके अनुरूप इनके चित्त में व बाह्य जीवन में इनके प्रभाव भी होते हैं।

अब साधारण मनुष्यों में इन तीन प्रकार के कर्मों का भोग किस प्रकार होता है ? इस सत्य को महर्षि अपने अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ४/८ ॥

शब्दार्थ= ततः = उन (तीन प्रकार के कर्मों)-से; **तद्विपाकानुगुणानाम्**= उनके फल भोगानुकूल; **वासनानाम्**= वासनाओं की; **एव**=ही; अभिव्यक्ति (उत्पत्ति) होती है।

भावार्थ= सामान्य जनों के तीन प्रकार के कर्मों से उनके फल भोग के अनुकूल वासनाओं की ही उत्पत्ति होती है।

योगऋषि पतंजलि के द्वारा कहे गए इस सूत्र में कर्म और चित्त के सम्बन्धों का रहस्य समाहित है। हमारे अपने मन में कामनाओं व कल्पनाओं की अनेकों लहरें उठती रहती हैं। इन कामनाओं व कल्पनाओं के सम्मिश्रण मन में विचारों का सृजन होता है। इन विचारों की त्वरा व तीव्रता हमारे अन्तर्मन में अंकुरित होने वाली कामनाओं, भावनाओं व वासनाओं के अनुरूप होती है। यह त्वरा व तीव्रता ही हमारी इच्छा बनती है और हम कर्म में प्रवृत्त होते हैं। हमारी इच्छा के शुभ व अशुभ तथा शुभाशुभ स्वरूप के अनुरूप ही हमारे त्रिविध कर्मों का स्वरूप निश्चित होता है।

शास्त्र 'गहना कर्मणोगतिः' का उपदेश देते हैं। इस गहन कर्म गति को और अधिक विस्तार में समझ लेना जरूरी है। हम सबके सामान्य जीवन में कर्म नित्य है। हम अपने हर दिन में व्यवस्थित या अव्यवस्थित रूप से कुछ न कुछ अवश्य करते रहते हैं। कोई ऐसा दिन नहीं होता, यहाँ तक कि दिन का कोई ऐसा क्षण नहीं होता, जब हम कर्म न करते रहते हों। यहाँ विचार करने की, अनुभव करने की बात यह है कि हम कर्म करते ही क्यों हैं ? और यदि करते भी हैं तो किसी विशेष कर्म में क्यों और किसलिए प्रवृत्त होते हैं ?

इस सूत्र में महर्षि हमारी इस जिज्ञासा का उत्तर देते हैं। इस प्रसंग में वह दो बातें कहते हैं- १. **तद्विपाकानुगुणानाम्**= उन कर्मों के फल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भोगानुकूल। हमने जो कर्म किए, जिन्हें हम कर चुके हैं, उनकी ऊर्जा शुभ या अशुभ रूप में हमारे चित्त में संचित होती है। कर्म की प्रकृति, कर्म में निहित भाव, विचार व संकल्प की प्रकृति व इनकी तीव्रता के अनुरूप कालक्रम में इन कर्मबीजों का परिपाक हो जाता है। एक समय ऐसा भी आता है कि कर्मबीज अपना परिणाम देने के लिए तैयार हो जाते हैं। चित्त भूमि में इनका अंकुरण होने लगता है।

और तब इस सूत्र का दूसरा सत्य प्रकट होता है। २. **अभिव्यक्ति-वासनानाम्**= चित्त में इनके फल भोग के अनुकूल अनुरूप वासनाओं की उत्पत्ति होती है। स्वभावत: उस समय विशेष में मन में वैसे भाव, विचार, अभिरुचि व प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है। परिपक्व कर्म की प्रगाढ़ता व तीव्रता के अनुरूप इसमें भी तीव्रता व प्रगाढ़ता होती है। हम वैसा ही करने के लिए विकल, बेचैन व आतुर, आकुल होने लगते हैं। हमसे वैसा किए बिना रहा नहीं जाता। मन में बार-बार उस तरह की उमंगे-तरंगे उठने लगती हैं। सोते जगते मन उसके लिए प्रेरित व प्रवृत्त होने लगता है। इच्छा तीव्र होती है। वैसा करने के लिए संकल्प प्रगाढ़ होता है।

इस मन:स्थिति के साथ परिस्थितियों में जीवन के बाहरी परिदृश्य में ठीक वैसे ही परिवर्तन आने लगते हैं। कर्म के फलभोग के अनुरूप ही वैसे ही संयोग प्रकट होने लगते हैं। उसी तरह के लोगों से मिलना होता है। उसी तरह के घटनाक्रम घटित होने लगते हैं। इस कर्म के फलभोग की प्रकृति के अनुरूप जो स्थान परिस्थितियाँ अथवा परिदृश्य आवश्यक हैं, हम स्वयं वहाँ पहुँच जाते हैं। हमारे जीवन के सारे संयोग उसी के अनुरूप हो जाते हैं। हम जब चाहें तब अपने विगत जीवन में आए मोड़ों व घटनाक्रमों के परिप्रेक्ष्य में इस सत्य का अध्ययन-विश्लेषण व मूल्यांकन कर सकते हैं। इसके सत्यता की परख कर सकते हैं। यहाँ पर इस सच का हमेशा स्मरण रखना चाहिए कि यह सब यानि कि मन:स्थिति व परिस्थिति के सभी परिवर्तन होते हैं हमारे कर्मफल भोग के अनुरूप ही। जिस कर्मबीज का अंकुरण हमारे चित्त में हुआ है, जो प्रारब्ध कर्म अपना फल भोग देने के लिए हमारी चित्तभूमि में प्रकट हुआ है। ये सभी परिवर्तन भी उसी के अनुरूप होते हैं। यदि यह शुभ है तो ये परिवर्तन भी शुभ व सुखद होते हैं। लेकिन यदि यह अशुभ हैं, तो ये परिवर्तन भी अशुभ व दु:खद

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होते हैं। यदि यह शुभ व अशुभ मिश्रित हैं तो ये परिवर्तन भी शुभ व अशुभ मिश्रित यानि कि सुख-दुःख का मिश्रण होते हैं।

इस तरह तीन प्रकार के कर्मफल भोग के अनुरूप हमारे हम सबके जीवन में आन्तरिक व बाहरी परिवर्तन होते हैं। इन्हीं के अनुरूप हमारी वासनाओं की उत्पत्ति होती है। कर्मफल भोग के इस सूत्र-सिद्धान्त के साथ एक सत्य यह भी जुड़ा हुआ है कि हमारे जीवन में किया जाने वाला तप, किए जाने वाले व्रत, अनुष्ठान, दान व वर्तमान शुभ कर्मों की तीव्रता विगत के अशुभ कर्मफल भोग की तीव्रता को क्षीण कर देती है। इसी के साथ-साथ शुभ कर्मों के फलभोग को बढ़ा देती है। यदि इस क्रम में हमारे वर्तमान तप, व्रत व अनुष्ठान आदि निष्काम हैं तो भी हमारे चित्त से अशुभ की अशुद्धियों का निवारण होता है और हमें निर्मल मति प्राप्त होती है। इस निर्मल मति के स्वाभाविक परिणाम हमारे जीवन में ज्ञान, भक्ति व वैराग्य के रूप में प्रकट होते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संस्कारों के अनुरूप घटता है- कर्मफल भोग

अन्तर्यात्रा विज्ञान में कर्म के सिद्धान्त का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक विवेचन है। इसके प्रयोग न केवल इसे प्रकट करते हैं, बल्कि इसको परिमार्जित भी करते हैं। जो कर्म किया जाता है, उसकी तीव्रता उससे जुड़े भाव व विचार की तीव्रता के अनुरूप होती है। भाव व विचार से सम्बन्ध न होने पर कोई भी कर्म केवल क्रिया बनकर रह जाता है। ऐसी स्थिति में इसका फल तात्कालिक होता है, दीर्घकालिक नहीं हो पाता। भाव व विचार की सकारात्मकता एवं नकारात्मकता से जुड़कर कोई भी क्रिया शुभ अथवा अशुभ कर्मों में परिवर्तित हो जाती है। सकारात्मक भाव एवं विचार राग बनते हैं तथा नकारात्मक भाव एवं विचार द्वेष को जन्म देते हैं। राग व द्वेष की यही प्रक्रिया हल्की एवं गाढ़ी के अनुरूप स्मृति व संस्कार का रूप ले लेती है। इनके उभरने व उदय होने से हमारे जीवन की धारा व दिशा में मोड़ आते हैं और इनसे जुड़े कर्म इनके साथ अपने फलभोग को प्रकट करते हैं।

अब अगले क्रम के सत्य को महर्षि अपने आगे के सूत्र में प्रकट करते हैं-

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयो रेकरूपत्वात्॥

॥ ४/९ ॥

शब्दार्थ= **जातिदेशकालव्यवहितानाम्**=जाति, देश और काल- इन तीनों का व्यवधान रहने पर; **अपि**=भी; **आनन्तर्यम्**= कर्म के संस्कारों में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

व्यवधान नहीं होता है; **स्मृतिसंस्कारयोः**= क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों का; **एकरूपत्वात्**= एक ही स्वरूप होता है।

भावार्थ= जाति, देश व काल- इन तीनों का व्यवधान रहने पर भी, कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता है क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों का एक ही स्वरूप होता है।

इस सूत्र में कर्मफल भोग के प्रकट होने का सत्य स्पष्ट होता है। इस सम्बन्ध में कई बिन्दु स्पष्ट किए गए हैं। इनमें से पहला बिन्दु है- १. जाति, देश व काल के सन्दर्भ में। इनमें जाति का सम्बन्ध जन्म से है, देश का सम्बन्ध स्थान से है और काल का सम्बन्ध समय से है। हममें से हर कोई जो भी कर्म करता है, उसमें ये तीनों ही किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होते हैं। हमारे इस वर्तमान जन्म से पहले भी अनेकों जन्म हो चुके हैं। इन पहले के सभी जन्मों में हमने किसी न किसी स्थान व किसी न किसी समय में कुछ न कुछ कर्म किए हैं। फिर भले ही ये शुभ हों अथवा अशुभ अथवा इन दोनों का मिला जुला रूप हों।

इन कर्मों के साथ अच्छे या बुरे भाव भी जुड़े रहे हैं। जिनका संग्रह चित्त भूमि में सुखद या दुःखद स्मृतियों व संस्कारों के रूप में हुआ है। ये स्मृति व संस्कार इन सूत्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। हमारे साथ जब कोई अच्छी या बुरी घटना होती है अथवा हम किसी अच्छी या बुरी अनुभूति से गुजरते हैं तो उसका संचय स्मृति के रूप में होता है। ये स्मृतियाँ गाढ़ी और गहरी होने पर संस्कारों के रूप में संचित हो जाती हैं। इसीलिए सूत्रकार ऋषि कहते हैं कि स्मृति व संस्कार में तात्त्विक रूप से कोई भिन्नता नहीं है। इनमें गहरी एकरूपता है। जब हमारी चित्तभूमि में कोई संस्कार उदय होता है तो ऐसे में उससे जुड़ा कर्मफलभोग भी उदय हो जाता है। इसमें जाति, देश अथवा काल का व्यवधान नहीं होता।

इस सूत्र के सत्य को प्रकट करने वाली एक रोचक व प्रेरक पौराणिक कथा है। इसका सम्बन्ध महाभारत काल के घटनाक्रमों से है। महाभारत के महासमर से पहले भगवान श्रीकृष्ण शान्ति दूत बनकर कौरवों की सभा में गए। वहाँ पर उन्होंने शान्ति प्रस्ताव के कई रूप कौरव सभा में रखे। दुर्योधन ने न केवल इन्हें मानने से इन्कार किया, बल्कि वह भगवान श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भी करने लगा। तब भगवान ने कौरव सभा में अपना विराट स्वरूप दिखाया। इस अवसर पर अनेकों के साथ धृतराष्ट्र के मन की मलिनता की कुछ परतें हटीं। उन्हें लगने लगा कि यदि मेरी अन्धता न होती तो मैं भी श्रीकृष्ण के स्वरूप की दिव्यता को निहार सकता।

अपने इस अन्धेपन से उद्विग्न होकर धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण से कहा- ''हे वासुदेव! आज मैं अपने अन्धेपन के कारण आपको नहीं देख पा रहा हूँ। हे माधव! मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि मेरे किस संस्कार व कर्म के अशुभ प्रभाव ने मुझे यह दण्ड दिया है ? मेरे इस अन्धेपन का कारण मेरा कौन-सा अपराध है ?'' धृतराष्ट्र के इन प्रश्नों के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा- ''हे महाराज धृतराष्ट्र! आपकी इन जिज्ञासाओं का सम्बन्ध आपके पिछले जन्मों के कर्मों व इनसे जुड़े संस्कारों से है। इन्हें देखने के लिए योगस्थ होकर आपकी चित्तभूति की गहराई में उतरना पड़ेगा।'' इस पर धृतराष्ट्र बोले- ''हे मधुसूदन! आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। जैसे भी हो मेरी यह जिज्ञासा पूर्ण कीजिए।''

धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर वहीं उस कुरुसभा में श्रीकृष्ण ध्यानस्थ हो गए और ध्यान की इस गहनता में उन्होंने हस्तिनापुर के महाराज धृतराष्ट्र की चित्तभूति का निरीक्षण करना आरम्भ किया। और इसे देखते हुए बोले- ''धृतराष्ट्र! मैं आपके पिछले जन्मों को देख रहा हूँ। अब मैं एक-एक कर पिछले सात जन्मों को देखकर बता रहा हूँ कि इनमें से किसी जन्म में ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसके कारण आपको अन्धा होना पड़े।'' इस पर धृतराष्ट्र ने कहा- ''तब क्या मेरे साथ प्रकृति ने अन्याय किया है ?'' इस पर श्रीकृष्ण बोले- ''प्रकृति किसी के साथ कोई अन्याय नहीं करती है। राजन्! आप थोड़ा ठहरें।''

इसके काफी देर बाद श्रीकृष्ण ने कहा- ''हे महाराज! आपके वर्तमान जीवन से पहले का १०८वाँ जन्म देख रहा हूँ। इसमें मैं देख रहा हूं कि एक किशोर बालक एक पेड़ के घोसलों से चिड़ियों के सारे बच्चों की आँखों को काटें चुभों कर फोड़ रहा है। उन्हें अन्धा कर रहा है। यह किशोर और कोई नहीं स्वयं आप हैं महाराज! इन पिछले जन्मों में आपके शुभ कर्मों के कारण आपका यह संस्कार उभर नहीं सका। इस जन्म में आपका यह संस्कार

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उभरने के साथ उससे जुड़ा आपका कर्म फल भी उभरा, जिसके परिणामस्वरूप आपको अन्धे के रूप में जन्म लेना पड़ा।'' संस्कार के उभरने पर कर्मफल भोग भी उभर जाता है। इसमें जाति, देश व काल का कोई व्यवधान नहीं होता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

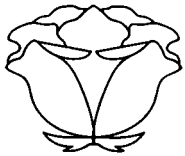

अनादि है वासनाएँ

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अपनी निरन्तरता में चित्त, चेतना एवं चिन्तन को प्रकाशित करते हैं। तब समझ में आता है कि कर्मों के फलभोग का वास्तविक कारण वासनाएँ हैं। इन वासनाओं के कारण इच्छाएँ, आसक्ति और राग-द्वेष सभी अंकुरित व पल्लवित होते रहते हैं। इन्हीं के साथ शुभ-अशुभ कर्मों व उनके फलभोग का सिलसिला चलता रहता है और इनके फलभोग जीवन के विविध घटनाक्रमों के रूप में सामने आते रहते हैं। यह क्रम अतिविचित्र एवं अन्तहीन है। इसमें न तो कभी रुकावट आती है और न कभी विराम-विश्रान्ति के पल आते हैं। सब कुछ यथावत चलता रहता है। देखने पर बस घटनाक्रमों का स्वरूप बदलता है, घटनाओं के पात्र बदलते हैं लेकिन वस्तुतः तत्त्वतः कारण वही बने रहते हैं। इस अन्तहीन व अनन्त शृंखला को तोड़ने के लिए वासनाओं को तोड़ना होगा और ये वासनाएँ केवल अविद्या के नष्ट होने पर ही नष्ट होती हैं।

जीवन में कर्म के साथ अथवा जीवन के घटनाक्रमों के साथ अनायास ही हमारी शुभ या अशुभ भावनाएँ जुड़ जाती हैं। यह जुड़ाव ही अन्तर्चेतना में राग-द्वेष को जन्म देता है और इसी के साथ जन्म लेती है स्मृतियाँ, जो गाढ़ी और गहरी होने पर संस्कारों का रूप ले लेती हैं। ये संस्कार अपने कालक्रम में उदय होने पर अपने साथ जुड़े पुराने कर्मों को फलभोग के रूप में प्रकट करते हैं और

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसी के साथ नए कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनके साथ फिर से भावनाओं के आरोह-अवरोह जुड़ते हैं और संस्कारों का नया क्रम चल पड़ता है और तब संस्कार और संसार साथ-साथ प्रवाहित होते रहते हैं।

अब इसके अलगे क्रम में सूत्रकार महर्षि कर्म और उनके फलभोग की आधारभूत कारण वासनाओं के बारे में कहते हैं-

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्॥ ४/१०॥

शब्दार्थ= **तासाम्**= उन वासनाओं की; **अनादित्वम्**= अनादिता है; **आशिषः नित्यत्वात्**= क्योंकि प्राणी में (अपने) बने रहने की इच्छा नित्य अर्थात् अनादिकाल से; **च**= ही है।

भावार्थ= वासनाएँ अनादि हैं क्योंकि सभी प्राणियों में जीने की इच्छा नित्य है।

सूत्रकार महर्षि के इस सूत्र में जीवन, कर्म, फलभोग इन सभी की आधारभूत व्यवस्था पर तत्त्वचिन्तन है। वासना ही यह व्यवस्था है। ये वासनाएँ अनादि हैं, इसी के साथ जीवन एवं उसके कल्याण की इच्छा भी नित्य है। ये कभी भी समाप्त नहीं होते। इनका कोई अन्त नहीं होता। बस जीवन के परिवर्तित क्रम में इनका स्वरूप बदलता है।

इस प्रसंग को स्पष्ट करने वाली एक प्रेरक पुराण कथा है। यह कथा कहती है कि बाह्लीक देश में शूरसेन नाम के अति प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनके पास सुख-समृद्धि के अगणित साधन थे। उनका वैभव अपार था। इसी के साथ उनका स्वभाव भी विलासी था। सुख-साधनों में, वैभव-विलास में निमग्न रहना उनकी दिनचर्या के अथ से इति तक शामिल था। इससे न वे थकते थे, न ऊबते थे। बार-बार, अनेक बार, अनेको भोग भोगे जाने के बावजूद न तो उनकी तृप्ति थी, न तुष्टि, ऐसे में भला उन्हें शान्ति कैसे मिल पाती। अतृप्ति, असन्तुष्टि व अशान्ति उनके जीवन का परिचय, पर्याय व परिभाषा बनी हुई थी। वह अधिक से अधिक जीना चाहते थे और अधिक से अधिक सुखों का भोग करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अपने राजमहल में अनेकों विशेषज्ञों, चिकित्सकों, वैद्यों की नियुक्ति कर रखी थी। बलवर्धक एवं बाजीकरण की अनेकों औषधियों का सेवन करके अपनी सुख भोग करने की क्षमता बढ़ाते थे।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उनका कल्याण चाहने वाले राजपुरोहित मैत्रेय ने उन्हें कई तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन उन्हें कुछ भी समझ न आया। वासनाओं की आँधी में उनका जीवन तिनके की तरह उड़ रहा था और वे इसे सम्हाल नहीं पा रहे थे। दुष्पूर वासनाएँ तो पूरी न हो सकीं, हाँ एक दिन उनका जीवन अवश्य पूरा हो गया। बल-वीर्यवर्धक औषधियाँ, रस, रसायन काम न आ सके। उन्होंने देह छोड़ दी। समूचे राजमहल में कोहराम मच गया। रानियाँ बिलखने लगीं। उनकी चाहत थी कि महाराज फिर से जीवित हो जाएँ। उन सबने राजपुरोहित मैत्रेय से इसके लिए प्रयास करने के लिए कहा। राजपुरोहित उनकी बात मानते हुए महाराज के शरीर को सुरक्षित रखवा दिया और वन में महर्षियों के आश्रम में गए।

उनकी राजभक्ति पर विचार करके महर्षि प्रगाथ उनके साथ चलने के लिए तैयार हो गए। महर्षि अनेक विद्याओं के जानकार थे। अलौकिक शक्तियों एवं सिद्धियों की उनमें विपुलता थी। इन शक्तियों व सिद्धियों के साथ उनमें जीवन का तत्त्व का बोध भी था। वह जानते थे कि वासना अनादि है। अविद्या के नाश होने पर ही इसका नाश होता है। राजमहल पहुंचकर उन्होंने वस्तुस्थिति का निरीक्षण किया। उन्होंने समाधि की गहराईयों में यह भी जान लिया कि भोग-वासनाओं की अधिकता के कारण बाह्लीक नरेश शूरसेन कीड़े की योनि में पहुँच गए हैं और इस समय वह अन्यत्र कहीं नहीं बल्कि राजभवन के समीप उद्यान में हैं। उन्होंने इस स्थिति से राजपुरोहित और महारानियों को अवगत कराया।

सारी स्थिति को बताते हुए उन्होंने कहा- ''यदि आप सब मिलकर उन्हें कीड़े की योनि से मुक्त करा सकें तो मैं उनके जीव को पुनः उनके शरीर में प्रवेश करा दूँगा। इसके लिए कुछ अधिक नहीं बस कीड़े को मारना पड़ेगा।'' बात बड़ी साधारण थी। इसके लिए सभी तैयार हो गए। महर्षि प्रगाथ ने उन्हें कीड़े की पहचान भी करा दी। बस फिर क्या था, राजमहल के कर्मचारी सैनिकों के साथ इस काम में लग गए। लेकिन सुबह से शाम हो जाने पर भी वे इसमें सफल न हो सके। वह कीड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिए बचता, भागता व छिपता फिरता रहा। कीड़े की इस स्थिति को देखकर महर्षि ने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग कर उस कीड़े के जीव से सम्पर्क किया, उसे मनुष्य की वाणी में बोलने की शक्ति प्रदान की।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ऐसा करके उन्होंने उसे समझाया कि तुम इस कीड़े के शरीर का त्याग कर दो। हम तुम्हें पुन: महाराज शूरसेन के शरीर में प्रवेश देंगे। साथ ही तुम्हारे पुराने शरीर को फिर से स्वस्थ एवं बलपूर्ण बना देंगे, जहाँ तुम अपने इच्छित भोगों को भोग सकोगे। इस पर कीड़े ने कहा- ''महर्षि आपका कथन तो ठीक है। पर मेरे इस नए शरीर में आनन्द कम नहीं है। यहाँ पर भी मैं अपनी प्रजाति का राजा हूँ। यहाँ भी मेरी रानियाँ हैं। जो सुख-भोग मैंने पुराने शरीर में प्राप्त किए, उससे कहीं ज्यादा सुख इस शरीर में है।'' कीड़े की ये बातें सभी ने सुनीं और वह अपने बिल में चला गया। उसके जाने के बाद महर्षि ने कहा- ''वासना अनादि है। इसी तरह प्रत्येक प्राणी में अपने जीवन और उसके कल्याण की इच्छा भी अनादि है। इसी से संस्कार और कर्मफल भोग बनते हैं और संस्कार व संसार का क्रम चलता रहता है। जब तक चित्त में विवेक का प्रकाश नहीं उदय होता है, तब तक अविद्या का अँधियारा नहीं छटता। अविद्या के नाश से ही वासना का नाश सम्भव है।''

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

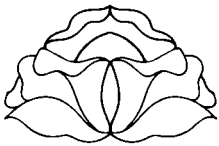

जानें वासना के कारणों को

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की प्रगाढ़ता और परिपक्वता के परिणाम में विवेकज्ञान का उदय सम्भव होता है। इसके प्रभाव व प्रकाश में वासनाएँ तिरोहित होती हैं। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक वासनाएँ चित्त में संगृहीत रहती हैं। विचारों में, भावनाओं में भले इनका हर समय अनुभव न हो, फिर भी बीज रूप में चित्त में संग्रह बना रहता है और अनुकूल परिस्थितियों में अपने आप इनका अंकुरण हो जाता है। तब इनका प्रभाव प्रत्यक्ष व प्रकट में अनुभव होने लगता है। इस स्थिति को कुछ इस तरह से समझा जा सकता है जैसे कि ग्रीष्म के कठिन ताप से धरती में हरियाली सूख जाती है। मैदान हरियाली विहीन, घास-पात रहित नजर आने लगते हैं। लेकिन उस अवस्था में भी इनके बीज धरती की मिट्टी में छुपे रहते हैं। वर्षा ऋतु की आद्रता आने पर, वायु और मौसम की अनुकूलता आने पर पुनः इनका अंकुरण व विकास होने लगता है। वासनाएँ भी चित्तभूमि में इसी तरह बीज रूप में छिपी रहती हैं और परिस्थितियों व परिदृश्य की अनुकूलता पाने पर फिर इनका प्रभाव प्रकट होने लगता है।

जीव के जीवन में ऐसा कोई काल नहीं था, ऐसा कोई काल नहीं है और ऐसा कोई काल नहीं होगा, जब वासनाएँ न रही हों। बस बदलती परिस्थितियों में, बदलते परिदृश्य में इनके रूप में परिवर्तन होता है। तत्त्व वही रहता है, बस

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तथ्य बदल जाते हैं। कारण में परिवर्तन नहीं होता, केवल कार्य परिवर्तित होते हैं। जीव का जीवन किसी भी योनि में हो, उसमें जीने की इच्छा बनी रहती है। उसमें सुखी होने की, सुख भोग पाने की चाहत जस की तस रहती है। सुख के साधन अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग होते हैं। लेकिन सुख की चाहत हमेशा हर समय वही बनी रहती है। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अब अगले सूत्र में योगऋषि पतंजलि वासनाओं के सम्बन्ध, सन्दर्भ और आधार पर अपना मत प्रकट करते हैं-

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ४/११ ॥

शब्दार्थ= **हेतुफलाश्रयालम्बनैः**= हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन- इनसे; **संगृहीतत्वात्**= वासनाओं का संग्रह होता है, इसलिए; **एषाम्**= इन (चारों) का; **अभावे**= अभाव होने से; **तदभावः**= उन (वासनाओं) का भी (सर्वथा) अभाव हो जाता है।

भावार्थ= हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन इनके द्वारा वासनाओं का संग्रह होता है। इन चारों का अभाव होने से वासनाओं का अभाव हो जाता है।

इस सूत्र में सूत्रकार ऋषि ने वासनाओं के सम्बन्ध में पहले तो इनके संग्रह होने के चार कारण गिनाए हैं- १. हेतु, २. फल, ३. आश्रय एवं ४. आलम्बन। बाद में इन चारों के अभाव से वासनाओं के अभाव का सत्य उद्धृत व उद्घाटित किया है। वासनाओं का अनुभव जीव मात्र को होता है। न कोई इनसे वंचित है और न कोई इनसे मुक्त। हाँ, मनुष्य शरीर में मनुष्य जीवन में इनसे छुटकारे की सम्भावना अवश्य है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह सूत्र मनुष्य मात्र के लिए व जीव मात्र के लिए हितकर है। विचारशील एवं साधनापरायण जनों के लिए इस पर व्यापक विचार करना न केवल आवश्यक है बल्कि अनिवार्य भी। ताकि वासना के वञ्चित होने का उपाय मिल सके।

वासनाओं पर विचार क्रम में सबसे पहले १. हेतु है। वासना के हेतु के रूप में जीवन विद्या एवं योग विद्या के विशेषज्ञों व विशारदों ने पंचक्लेश की चर्चा की है। महर्षि ने योगसूत्र के द्वितीय पाद अर्थात् साधन पाद के तीसरे सूत्र में इनका वर्णन किया है- **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशा (२/३)**। अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पाँचों क्लेश हैं। इन पाँचों के मूल में अविद्या है। इसे महर्षि इसी द्वितीय पाद अर्थात् साधनपाद के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चौथे सूत्र में कहते हैं- **अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविछिन्नोदाराणाम् (२/४)**। ये पंच क्लेश जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार, इस प्रकार चार अवस्थाओं में वर्तमान रहने वाले हैं। जिनका वर्णन अविद्या के बाद किया गया है। उनका कारण अविद्या है। अविद्या से ही अस्मिता तथा बाद में राग, द्वेष व अभिनिवेश पनपते हैं। इसी से वासनाओं व कर्म का जाल फैलता है। जो जीव के जीवन को विविध घटनाक्रमों को उलझाता और बाँधता है। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो जिस तरह क्लेशों का मूल कारण अविद्या है। उसी तरह वासनाओं का मूल कारण भी यही है। अविद्या के नाश होने पर ही वासनाओं के हेतु का नष्ट होना सम्भव है।

अब दूसरे क्रम में २. फल है। इन वासनाओं से उपजे शुभ-अशुभ कर्मजाल का फल जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता है। इस सत्य को महर्षि ने योगसूत्र के द्वितीय पाद अर्थात् साधनपाद के तेरहवें सूत्र में उद्घाटित किया है- **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः (२/१३)** अर्थात् क्लेश की जड़ से पनपने वाली वासनाओं और उनसे उपजे कर्मों का फल जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता है। जैसी वासनाएँ और जैसे कर्म, उसी के अनुरूप और उसी के अनुकूल होता है जन्म, मिलती है आयु और प्राप्त होते हैं भोग। वासनाओं के अनन्त प्रवाह की भाँति ही इनका प्रवाह भी अनादि और अनन्त है। न वासनाएँ विराम पाती हैं और न ही जन्म, आयु और भोग का सिलसिला थमता है। यदि जन्म, आयु व भोग के प्रवाह को विराम मिलता है, तो वासनाओं व कर्म को भी विराम मिलना चाहिए।

इसके पश्चात् तीसरे क्रम में ३. आश्रय है। वासनाओं के प्रकार कितने भी हों, इनके रूप कितने ही क्यों न हो, लेकिन इनका आश्रय हमेशा ही चित्त होता है। चित्तभूमि में ही वासनाएँ, संस्कार, कर्म और इनके फल भोग संगृहीत रहते हैं। हम स्वयं जाने, अनजाने, चाहे, अनचाहे इनके संग्रह में बढ़ोत्तरी करते रहते हैं। इनकी प्रकृति के अनुरूप कालक्रम में इनका परिपाक होता रहता है और इनका फल भोग हमारे सामने आता है। जिसे भोगने के लिए हम विवश होते रहते हैं। इससे बचने का उपाय यही है कि वासनाओं का आश्रय वासनाओं से विहीन है। न वासनाएँ संग्रहीत हो और न ही संस्कार व कर्मराशि, तभी फलभोग से बचा जा सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इन तीनों के बाद चौथे क्रम में ४. आलम्बन है। इसमें हम उन सबकी गणना करते हैं, जिनसे वासना बीज अंकुरित, पोषित व पल्लवित होते हैं। सभी इन्द्रिय विषय, शब्द, रूप, रस, गन्ध व स्पर्श इसी में आते हैं। इन्हीं का विस्तृत रूप सुखभोगों के साधनों में प्रकट होता है। अनेक अनुभवों के बाद भी इनकी लालसाएँ नहीं मिटती। काम, क्रोध, लोभ, मोह बढ़ता जाता है। साथ ही बढ़ते हैं कर्मबन्धन और इनके दारुण कर्मफल भोग। आलम्बन तो प्रकृति में सदा ही उपस्थित हैं और रहेंगे। हाँ, वासनाबीज दग्ध हो जाएँ तो ये सभी आलम्बन उन्हें अंकुरित करने में समर्थ न होंगे।

इसी सत्य को सूत्रकार महर्षि '**एषाम् अभावे तद्भाव**' के कथन में व्यक्त करते हैं अर्थात् इन चारों का अभाव हो तो वासनाओं का भी अभाव हो जाएगा। इसके लिए इन चारों के मूल अविद्या के अभाव के प्रयत्न करने पड़ेंगे। यह केवल विवेकज्ञान के प्रकाश से ही सम्भव है। अर्थात् विवेकज्ञान का प्रभाव व प्रकाश बढ़ेगा तो स्वतः ही अविद्या प्रभावहीन हो जाएगी और तब हम वासनाओं के प्रभाव से मुक्त हो सकेंगे।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

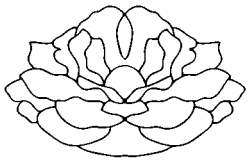

वासना कभी नष्ट नहीं होती

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग विवेक को अंकुरित और पोषित करते हैं। इससे जीवन में समझ, बोध विकसित होने के अवसर बनते हैं। इसके साथ ही हमारी जीवन दृष्टि परिवर्तित व रूपान्तरित हो जाती है। तब हम घटनाक्रमों, सम्बन्धों, चित्त में उठने वाली वृत्तियों, वासनाओं को सही ढंग से, सम्यक् रीति से देखने में, समझने में समक्ष होते हैं। यह स्थिति सामान्य जीवन क्रम से भिन्न होती है। सामान्य क्रम में प्रत्येक घटनाक्रम हमें स्वयं में लीन कर लेता है। प्रत्येक सम्बन्ध हमें राग-द्वेष के साथ कर्मपाश में बाँधता चला जाता है। चित्त में उठने वाली हर लहर हमारी चेतना व चिन्तन को उठाती गिराती रहती है। हम इनके स्वरूप को सम्यक् रूप में समझने में सक्षम नहीं हो पाते। काल के प्रवाह में विविध घटनाक्रमों व चित्त की लहरों के थपेड़ों में तृणवत बहकते-भटकते व भ्रमित होते रहते हैं।

इस योगकथा में सूत्रकार महर्षि हमारे सामने विवेक का एक नया गवाक्ष, बोध की एक सर्वथा नयी चेतना प्रस्तुत करते हैं। काल की नयी कड़ियाँ कर्म के नए पाश तैयार करती हैं। हर बदलते क्षण के साथ वासनाओं का नया संग्रह तैयार किया जाता है। इसमें न कोई विराम है और न ही विश्रान्ति। यह कभी न थमने वाला क्रम है। जन्म पर जन्म बीतते हैं, बार-बार मृत्यु जीवन को ग्रसती है, परन्तु यह सिलसिला कभी रुकता नहीं। इसे रुकने के लिए इसको रोकने के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लिए इन चारों का अभाव आवश्यक है। इन सभी का मूल कारण अविद्या है। अविद्या के अभाव से इनका अभाव सम्भव है। और यह अविद्या तभी आती है, जब चित्त, चिन्तन एवं चेतना में विवेक ज्ञान का प्रकाश प्रसारित होता है।

इसे और भी स्पष्ट रीति से सूत्रकार ऋषि अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम्॥४/१२॥

शब्दार्थ= **धर्माणाम्**= धर्मों में; **अध्वभेदात्**= काल का भेद होता है, इस कारण; **अतीतानागतम्**= जो धर्म (अविद्या, वासना, चित्त और चित्त की वृत्तियाँ आदि) अतीत हो गए हैं और जो अनागत हैं- अभी प्रकट नहीं हुए हैं, वे भी; **स्वरूपतोऽस्ति**= स्वरूप से विद्यमान रहते हैं।

भावार्थ= काल भेद में वासना कभी व्यक्त होती है, कभी अव्यक्त होती है। परन्तु अव्यक्त होने पर भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान होती है।

इस सूत्र में 'धर्म' शब्द का अर्थ कार्य है। जब तक कार्य अपने कारण में छिपा है, प्रकाश में अभी नहीं आया, पर आगे आने वाला है, वह 'अनागत' है। जो कार्य प्रकाश में आने के अनन्तर कालान्तर में पुनः अपने कारण में छिप गया है, वह 'अतीत' है। अतीत और अनागत दोनों ही अव्यक्त अवस्थाएँ हैं। केवल जो प्रकट है, वर्तमान में है। वही व्यक्त है। काल भेद से धर्म का- कार्य का मार्ग भिन्न हो जाता है। जैसा कि इस सूत्र में अतीत व अनागत शब्दों से प्रकट किया गया। यह स्पष्ट है कि कार्य तत्त्व जब प्रकाश में आकर चालू रहता है, तब वर्तमान है, इसके पहले- जब तक प्रकाश में नहीं आया- अनागत था। उपयुक्त समय तक प्रकाश में रहने के बाद पुनः जब कार्य अपने कारण में छिप जाता है, तब वह अतीत है। इसका अर्थ है कि वह वस्तुतत्त्व अर्थात् वासना अपने अस्तित्त्व को कभी नहीं खोती। काल के आधार पर अतीत, वर्तमान, अनागत मार्ग का आश्रय लिए रहती है। जो परस्पर भिन्न है।

इसी आधार पर हम किसी वस्तु के अभाव या अविद्यमानता की बात करते हैं। पर वस्तुतः जो अतीत व अनागत के रूप में विद्यमान है। यदि वह वस्तुगत न हो तो अतीत अनागत के रूप में उसे कहा नहीं जा सकता। इसी के अनुसार आत्मज्ञान सम्पन्न योगी की समस्त वासना अपने कारण अविद्या में अन्तर्निहित हो जाती है तथा अविद्या का सम्पर्क आत्मज्ञानी योगी के साथ नहीं रहता। तात्पर्य है जो द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित है, उसके साथ अविद्या का सम्पर्क

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नहीं रहता। तब अविद्या से जन्म लेने वाली वासनाएँ भला उसके सम्पर्क में किस तरह से रह सकती हैं। वस्तुतः वे स्थानान्तरित हो जाती हैं। पुरुष सम्पर्क से हटकर, प्रकृति सम्पर्क में सिमट जाती है। ऐसी स्थिति के न आने तक योगसाधक को सावधानीपूर्वक मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। उसे वासनाशून्य होने के अभिमान से बचना चाहिए।

युगऋषि पूज्य गुरुदेव योगऋषि पतंजलि के इस सूत्र को स्पष्ट करने वाली एक बोधकथा सुनाते थे। इस कथा को सुनाते हुए उन्होंने कहा- महर्षि व्यास के शिष्य ऋषि जैमिनि थे। वे न केवल महान विद्वान थे, बल्कि साधना व सिद्धियों से सम्पन्न भी थे। उनका मन सदा निर्मल व तत्त्व विचार में लीन रहा करता था। वासना की वायु उन्हें स्पर्श तक नहीं करती थी। इस अवस्था में रहते हुए उन्हें दीर्घ अवधि व्यतीत हो गयी। अब इसे दैव इच्छा कहें अथवा किसी संस्कार का उदय या फिर अविद्या का प्रभाव, उन्हें अपने वासना शून्य होने का अभिमान हो आया। अनेक प्रसंगों पर वे इसे जता भी देते थे। इतना ही नहीं वे अब स्वयं को उच्च एवं वासना से घिरे अन्य प्राणियों को निम्न मानने लगे।

महर्षि व्यास ने उन्हें इसके बारे में चेताया, अगाह किया कि साधक को, तपस्वी को कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अभिमान वासना से कहीं अधिक घातक है। इससे जितना दूर रहा जा सके, उतना ही ठीक है। अनेक बार कहने, चेताने के बावजूद जैमिनि अपने गुरुदेव के इस कथन के मर्म को न समझ सके। ऐसी स्थिति में ऋषि व्यास ने अपने शिष्य को सीख देने के लिए एक लीला रची। उस समय ऋषि जैमिनि वन के एकान्त में अपनी कुटीर में साधनारत थे। एक सांझ आंधी के साथ तेज बारिश होने लगी। तभी एक युवा स्त्री ने बारिश से भीगते हुए जैमिनि की कुटीर का द्वार खटखटाया। द्वार खोलने पर उसने उनसे रात्रि में शरण देने की प्रार्थना की। वासना शून्य होने के अभिमान के साथ जैमिनि ने उसे देखा और सहजता से अपनी कुटी में शरण दे दी। कुटीर में स्थान देते हुए उसने यह भी कहा कि वह अन्दर जाकर विश्राम करे और द्वार को अन्दर से बन्द कर ले और किसी के कहने पर द्वार न खोले। ऐसा कहकर जैमिनि स्वयं कुटीर के बाहरी कक्ष में आ गए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रात्रि के गहरी होने के साथ जैमिनि के मन में वासना भी गहरी हो उठी। बाहर की आंधी और बारिश के साथ उनके मन में वासना की आंधी भी तेज हो उठी और बारिश की भाँति वासना उनके समग्र अस्तित्त्व में चारों ओर से बरसने लगी। उन्होंने कुटीर के अन्दर वाले कक्ष का द्वार कई बार खटखटाया। जब द्वार नहीं खुला तो उन्होंने आवेग और आवेश में वह द्वार तोड़ दिया। द्वार तोड़ने के बाद आश्चर्य से उनकी आँखें फटी रह गयीं। वहाँ उस कक्ष में कोई भी युवती न थी। वहाँ तो उनके गुरुदेव महर्षि व्यास बैठे ध्यान लीन थे। उनके आने पर उन्होंने आँखें खोली और जैमिनि को ध्यान से देखा।

जैमिनि का अभिमान गलकर पानी की तरह बह रहा था। ऋषि व्यास ने उन्हें समझाया- ''पुत्र! अविद्या की ही भाँति वासना भी अनादि है। यह प्रकट और अप्रकट होती है, नष्ट नहीं होती। हाँ, आत्मबोध होने पर सिद्धयोगी का इससे सम्पर्क नहीं होता। इसी को वासना का अभाव कहते हैं। इसलिए साधना परायण विचारशील को हमेशा ही वासनाशून्य होने के अभिमान से मुक्त होना चाहिए।'' अपने गुरुदेव महर्षि व्यास के उपदेश को जैमिनि ने उसी क्षण आत्मसात कर लिया। बाद में उन्होंने धर्म का तत्त्व बोध कराने वाले मीमांसा दर्शन की रचना की।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पल-पल रूप बदलती है वासनाएँ

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग द्रष्टा व दृश्य के सत्य का बोध कराते हैं। जो द्रष्टा है, वह नित्य है, शाश्वत है, अचल और ध्रुव है। और जो दृश्य है उसमें परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसमें पल-पल, क्षण-क्षण सब कुछ बदलता रहता है। इस बदलाव को रोका नहीं जा सकता। इसकी यही प्रकृति है। इसके प्रति दृष्टा का सम्मोहन अविद्या है। इस अविद्या के प्रगाढ़ होने से वासना स्वतः अंकुरित होने लगती है, पनपने लगती है। इसी अविद्या से अन्य चारों क्लेश- अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश अपने आप उदय हो जाते हैं। यहीं से वासना का जाल कर्म जाल को जन्म देता है। तब पाश व बन्धन जीवात्मा के जीवन की नियति बनने लगती है। वासना अपने स्वरूप में सदा विद्यमान रहती है। हम यदि वासना के व्यक्त होने को यदि इसकी उपस्थिति और अव्यक्त होने को इसका विनाश समझते हैं, तो यह हमारी स्वयं की भ्रान्ति है। वासना कभी विनष्ट नहीं होती है। इसका बस अविद्या में विलोप हो जाता है। अविद्या में यह सदा- सर्वदा समायी रहती है। जिस तरह अविद्या अनादि है, उसी तरह से इसे भी अनादि समझना चाहिए।

सूत्रकार महर्षि इस सत्य के अधिक गहन तत्त्व को अपने अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ ४/१३ ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शब्दार्थ= **ते**= वे (समस्त धर्म); **व्यक्त सूक्ष्माः**= व्यक्त स्थिति में और सूक्ष्म स्थिति में (सदैव); **गुणात्मानः**=गुणस्वरूप ही है।

भावार्थ= वे व्यक्त और सूक्ष्म स्थिति में गुण स्वरूप ही है।

अविद्याजन्य वासना का कोई भी धर्म हो, उसका कोई भी रूप हो, वह सब का सब प्रकृति के गुणों से भिन्न नहीं है। चाहे यह व्यक्त रूप में हो अथवा सूक्ष्म रूप में, किसी भी अवस्था में गुण रूप में ही होता है। प्रकृति के तीनों गुण सत, रज व तम इनकी सृष्टि करते हैं। चाहे यह सब कुछ कार्यरूप हो अथवा कारण रूप में, इनके प्रत्येक रूप में प्रकृति के गुणों की उपस्थिति इनमें बनी रहती है। जहाँ तक प्रकृति है, वहाँ तक गुणों का प्रवाह है। सत, रज और तम प्रकृति के ये तीनों गुण हर कहीं सक्रिय व उपस्थित रहते हैं। साथ ही इनमें आरोह-अवरोह की प्रक्रिया भी चलती रहती है। परिवर्तन का क्रम भी सदा बना रहती है। यही कारण है कि वासना के किसी दृश्य में स्थिरता नहीं आ पाती। अस्थिरता व परिवर्तन से इनका परिचय व इनकी पहचान हो पाती है।

एक महान दार्शनिक ने इस सत्य को पश्चिमी संस्कृति में सम्बन्धों की तीव्र परिवर्तनशीलता से समझाने की कोशिश की है। उसने अपने कथन के सन्दर्भ में एक उदाहरण देते हुए कहा है कि एक लड़की की दृष्टि कमजोर थी, लेकिन उसे चश्मा लगाना अच्छा नहीं लगता था। इसी बीच उस लड़की ने विवाह करने का निश्चय किया। आखिरकार थोड़े दिनों में उसका विवाह भी हो गया और तब वह अपने पति के साथ हनीमून मनाने के लिए नियाग्रा फाल्स गयी। जब वह हनीमून मनाकर लौटी तो उसको देखकर उसकी माँ एकदम चीख पड़ी। जल्दी से दौड़कर उसने आँखों के डॉक्टर को फोन किया।

फोन पर वह डॉक्टर को हाँफते हुए बोली- ''बिल्कुल अभी आपको यहाँ आना होगा। बहुत ही संकट की घड़ी आ गयी है। मेरी बेटी को चश्मा लगाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता और अभी वह हनीमून से लौटी है और.....।'' उसकी इन परेशानी भरी बातों को सुनकर डॉक्टर ने उसे बीच में टोकते हुए कहा- ''मैडम, कृपया अपने पर नियंत्रण रखें। आप अपनी बेटी को लेकर अस्पताल में मेरे पास आ जाएँ। चाहे उसकी आँखें कितनी ही खराब क्यों न हो, फिर भी यह कोई बहुत बड़ा संकट नहीं है।''''ओह नहीं''- उस लड़की की माँ ने कहा ''सुनिए तो जरा, अब जो आदमी उसके साथ हनीमून से वापस

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आया है, यह वह आदमी नहीं है, जिसके साथ वह नियाग्रा फाल्स शादी करके गयी थी।'' लड़की की माँ की इन बातों को कुछ अनसुना करते हुए उस डॉक्टर ने कहा- ''आप परेशान न हों। मैंने आपकी बेटी को पिछली बार कान्टेक्ट लेन्स दिए थे, उसने लगा भी लिए थे। उसके साथ आँखों की बड़ी समस्या नहीं हो सकती।''

इस घटना को सुनाते हुए उस दार्शनिक ने कहा- ''माँ को लगता है कि उसकी बेटी को आँखों का संकट है। डॉक्टर को लग रहा है कि आँखों को संकट भला कैसे हो सकता है, उसने तो कान्टेक्ट लेंस पहने हैं।'' माँ और डॉक्टर दोनों से बेपरवाह लड़की ने हनीमून के समय पति ही बदल लिया। वह शादी करके हनीमून मनाने किसी और के साथ गयी थी, जब वापस लौटी तब उसके साथ कोई और ही था। अविद्या से उपजी वासनाएँ इसी तरह इतनी तीव्रता से बदल जाती हैं। महर्षि कहते हैं कि ये वासनाएँ कितनी ही तेजी से क्यों न बदलें, ये व्यक्त हो अथवा सूक्ष्म, प्रकट हों अथवा अप्रकट, कार्य रूप में हों अथवा कारण रूप में, प्रकृति के गुण इनमें सर्वदा उपस्थित होते हैं क्योंकि वस्तुतः ये गुण रूप ही हैं।

हमारे अपने जीवन की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। एक क्षण वासना का एक रूप तो दूसरे क्षण उसका दूसरा रूप। क्षण में प्रेम तो क्षण में झगड़ा। क्षण-क्षण सब कुछ बदलता रहता है। कुछ भी स्थायी नहीं है। जो कुछ भी होता है, वह हमारे अस्तित्त्व का हिस्सा नहीं होता। सब तो हमारे सोचने-विचारने की प्रक्रिया का हिस्सा होता है। एक विचार के साथ हम कुछ होते हैं, तो दूसरे विचार के साथ हम कुछ और हो जाते हैं। प्रत्येक विचार हमें नयी-नयी वासनाओं के रंग में रंगता रहता है और इसी तरह से हम जीए चले जाते हैं। बहते हुए लकड़ी के टुकड़े की तरह, जिधर हवा उसे ले जाती है, वह उधर ही चला जाता है। हवा का रुख बदलता है, लकड़ी के टुकड़े का रुख भी बदल जाता है। ठीक ऐसे ही हमारी वासनाओं के रूप बदलते हैं, हम भी बदल जाते हैं। हमें अपनी चेतना, अपनी आत्मा का न कोई ध्यान है, न कोई ज्ञान और न कोई भान।

द्रष्टा को दृश्य से सम्मोहन मुक्त होना होगा। सन्त गुरजिएफ का अपने शिष्यों से कहना था- 'पहले आत्मवान बनो क्योंकि अभी तो तुम्हारा होना

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अस्तित्त्व ही नहीं रखता है। अपने जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य बन जाने दो।' अगर गुरजिएफ से कोई पूछता- 'हम प्रेम कैसे करें?' तो वह कहता- 'नासमझी की बातें मत करो। पहले आत्मवान बन जाओ, क्योंकि जब तक तुम आत्मवान न बनोगे, तब तक तुम प्रेम कैसे कर सकते हो? जब तक तुम आत्मवान न बनोगे, तुम आनन्दित कैसे रह सकते हो? जब तक तुम आत्मावान नहीं बनोगे, कैसे कुछ कर सकते हो? सर्वप्रथम आत्मवान बनना है, फिर उसके बाद सभी कुछ सम्भव हो सकेगा।' जहाँ तक प्रकृति है, उसके गुणों का प्रवाह है, वहाँ तक दृश्य है। इन दृश्यों में प्रत्येक पल परिवर्तन है जबकि हम स्वयं द्रष्टा हैं, इनके नित्य साक्षी और इन सबसे नित्य मुक्त।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

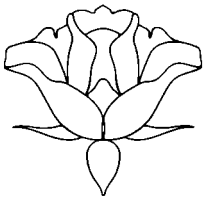

वासना से उत्पन्न होती है अनन्त अनुभूतियाँ

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों से चेतना परिष्कृत होती है, चिन्तन प्रखर होता है और चित्त समर्थ बनता है। फिर इनसे ऐसा कुछ होता है, जिसे देखकर सामान्य जन चमत्कार कहते हुए दांतो तले ऊंगली दबा लेते हैं। जो विचारशील हैं, जो ज्ञानवान हैं, वे जानते हैं कि यथार्थ में चमत्कार जैसा कुछ भी नहीं होता है। चमत्कार शब्द में केवल इतना ही अर्थ निहित है कि इस शब्द को कहने वाला कार्य व कारण के बीच के सम्बन्धों व नियमों से अनजान है। घटनाक्रम चाहे स्थूल प्रकृति में घटित हो रहे हों अथवा फिर सूक्ष्म प्रकृति में घटित हो रहे हों, सभी नियम व्यवस्था के अनुरूप व अनुकूल होते हैं। प्रकृति के नियमों के विपरीत कहीं कुछ भी घटित नहीं होता। होता बस इतना है कि स्थूल प्रकृति के अधिकांश नियमों से विज्ञानवेत्ता परिचित होते हैं। इसलिए वे यहाँ घटित होने वाले घटनाक्रमों की व्याख्या करने में सक्षम होते हैं। जबकि सूक्ष्म प्रकृति के नियमों की उन्हें जानकारी नहीं होती, इसलिए वे इनसे सम्बन्धित घटनाक्रमों को अविश्वसनीय या संयोग कहकर टाल देते हैं। सिद्धयोगी अथवा अध्यात्मवेत्ता इन नियमों से परिचित होने के कारण न केवल ऐसे घटनाक्रमों को समझते हैं बल्कि ऐसा बहुत कुछ करने में समर्थ होते हैं।

जो अनुभवी हैं, जिनमें सत्य को देखने की दृष्टि है, वे जानते हैं कि चित्त की वृत्तियाँ और प्रकृति के गुण मिलकर इस सृष्टि में अनेक रूप और आकार प्रत्यक्ष

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करते हैं। चित्त की वृत्तियाँ अविद्या से उत्पन्न वासना के ही रंग में रंगी रहती है और वासना का कोई भी रूप प्रकृति के गुणों से भिन्न नहीं है। इसलिए तत्त्व रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के गुणों से हमारी सभी अनुभूतियाँ साकार होती हैं। प्रकृति के तीन गुण असंख्य जीवों के चित्त की असंख्य वृत्तियाँ अनन्त दृश्य व अनुभवों के संसार का सृजन करती हैं।

इस सत्य को सूत्रकार महर्षि अगले सूत्र में और अधिक स्पष्ट करते हैं-

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम्॥ ४/१४॥

शब्दार्थ= **परिणामैकत्वात्**= परिणाम की एकता से; **वस्तुतत्त्वम्**= वस्तु का वैसा होना सम्भव है।

भावार्थ= परिणाम की एकता से वस्तु का वैसा होना सम्भव है।

इस सूत्र में संसार का, सृष्टि सृजन का मर्म प्रकट होता है। सामान्य बुद्धि इस सूत्र के सत्य पर सवाल उठाते हुए पूछ सकती है कि भला प्रकृति के तीन गुणों से यह सृष्टि का अनन्त विस्तार उसके अनन्त दृश्य, अनन्त रूप व आकार एवं अनन्त अनुभूतियाँ किस तरह सम्भव हैं ? इसके उत्तर में कई ऐसी बातें हैं जिसे सामान्य दृष्टि से देख-समझ कर इसे समझा जा सकता है। जैसे कि मूलत: रंग तो सात ही होते हैं, इनके भिन्न-भिन्न अनुपातिक मेल से अनेक-अनेक रंगों का मनमोहक संसार प्रकट होता है। यह कुछ ऐसा है जैसे कि एक ही तरह के कपड़े से दर्जी भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुष व बच्चों के अनेक-अनेक ढंग से, अनेक-अनेक डिजाइन के कपड़े बड़ी आसानी से तैयार कर लेता है।

कुछ ऐसा ही चित्त में समाहित वासना और प्रकृति के गुणों के मूल से होता है। सूत्रकार महर्षि इस सत्य को पहले ही प्रकट कर चुके हैं कि अविद्या की ही भाँति वासना भी अनादि है। अविद्या से उत्पन्न क्लेश एवं अविद्या से उपजी वासना से संस्कार व कर्मराशि के भिन्न-भिन्न भेद उत्पन्न होते हैं। चित्त व चित्त की वृत्तियाँ इसी अविद्या के ही रूप हैं। यह अविद्या ही भुवनमोहिनी माया है, जिससे सब जग सम्मोहित हो रहा है। चित्त में कालक्रम में उदय होने वाले संस्कार व कर्मराशि वासना को नए-नए रूप देते हैं और चित्त वृत्तियों को नए-नए रंग में रंगते हैं। ये चित्त वृत्तियाँ, संस्कार व कर्मबीजों में निहित ऊर्जा प्रकृति के गुणों के साथ मिलकर नए-नए परिणाम प्रस्तुत करती है। नयी परिस्थितियों, नया परिवेश, नए सम्बन्ध व नए घटनाक्रम, नए दृश्य व नयी अनुभूतियां का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सृजन आसानी से कर लेते हैं और ऐसा करते रहते हैं और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

इस स्थिति को चमत्कार जैसा कहा जा सकता है। परन्तु प्रकृति के नियमों के स्थूल व सूक्ष्म स्वरूप को समझने वाले जानते हैं कि सभी चमत्कार एक सुनिश्चित नियम के अनुसार घटित होते हैं। सभी घटनाएँ एक सुनिश्चित नियम का ही अनुसरण करती हैं। जब हम उस नियम को नहीं जानते या नहीं समझते, तब अपने ही अज्ञान के कारण उसे चमत्कार कह देते हैं। योगऋषि पतंजलि अपने दृष्टिकोण व अपने योग के प्रयोग में सम्पूर्ण रूप से वैज्ञानिक हैं। उनके सभी सूत्र उनके वैज्ञानिक प्रयोगों के तथ्यात्मक निष्कर्ष हैं।

बात अन्त: प्रकृति हो अथवा बाह्य प्रकृति की- सब ओर एक नियम विधान सक्रिय है। सारी आधारभूत प्रक्रियाएँ इन्हीं नियमों के अनुसार सक्रिय व क्रियाशील होती हैं। अगर आधारभूत प्रक्रिया बदल जाती है तो उसका प्रकट रूप भी बदल जाता है। हमें यदि नियम की आधारभूत प्रक्रिया का पता नहीं होता तो हम उसके प्रभाव व परिणाम को आश्चर्य से देखते हुए उसे चमत्कार कह देते हैं क्योंकि हम केवल उसके प्रकट रूप को ही देख पाते हैं, उसकी गहराई में छिपी प्रक्रिया को नहीं देख और समझ पाते। प्रकृति गत नियमों की अन्तर्धारा को नहीं देख पाते। ऐसी स्थिति में इसे अविश्वसनीय मानने लगते हैं। अपनी समझी को आश्चर्यजनक चमत्कार के रूप में समझने लगते हैं। जबकि ऐसी कोई चीज होती नहीं है।

वैज्ञानिक इस बात को अब प्रामाणित कर चुके हैं कि सारा जगत और जगत के सभी पदार्थ अणुओं के जोड़ से बना है और ये सभी अणु इलेक्ट्रान से बने हैं। तो फिर सोने और लोहे के बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं है। जो अन्तर हमें दिखाई देता है, वह वास्तविक नहीं है। दोनों ही तत्त्व इलेक्ट्रॉन से, विद्युतकणों से मिलकर बने हैं। ऐसे में भला यथार्थ या वास्तविक अन्तर कहाँ हुआ? जबकि दिखने में सोना और लोहा दोनों अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। भेद बस केवल इनकी आणविक संरचना में है, तात्त्विक रूप से इनमें कोई भी भेद नहीं है।

कई बार किसी तत्त्व में इलेक्ट्रॉन ज्यादा होते हैं, कई बार कम होते हैं, इसी से भेद दिखाई देने लगता है। जैसे कि ईंटें वही होती हैं, लेकिन उनसे बनने वाले

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भवन अलग-अलग दिखाई देते हैं। उन्हीं ईटों से बड़े सेठ या व्यवसायी का भवन बन सकता है और उन्हीं ईटों से गरीब का मकान भी बन सकता है। इनके पीछे के मौलिक कारण व नियम में कोई अन्तर नहीं है। महल कुटिया में बदल सकता है और कुटिया महल में बदल सकती है।

कुछ इसी तरह जो कुछ भी दृश्य अथवा अदृश्य में है, वह सब कुछ प्रकृति के तीन गुणों की ही परिणति है। इन्हीं का परिणाम है। इनसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। वैसे भी अनेक कारणों से मिलकर जो कार्य परिणाम रूप में आता है, वह स्वरूप में एक होता है। जैसे तेल, बत्ती और आग की लौ मिलकर एक प्रदीप बनता है। तेल आदि सब परस्पर सहयोग करते हुए प्रदीप अथवा प्रकाश रूप एक परिणाम को प्रस्तुत करते हैं। ऐसे ही प्रकृति के तीन गुण मिलकर पुरुष के भोग व अपवर्ग के लिए पृथक-पृथक एक दूसरे से भिन्न रूप में परिणाम प्रस्तुत करते हैं। वस्तुओं का यह परस्पर भिन्न रूप ही उनकी पृथक एकता का नियामक है। विचारशील इसे नियमानुरूप मानते हैं और नासमझ इसे चमत्कार समझ लेते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

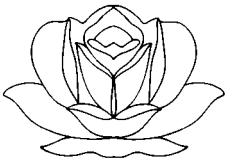

चित्त परिवर्तन से बदलती है अनुभूतियाँ

'चित्त' शब्द के रूप में छोटा है, लेकिन इसका अर्थ, इसकी व्यापकता बहुत बड़ी है। चित्त में हमारा समूचा संसार बीज रूप में सिमटा है। हमारे जन्म-जन्मान्तर इसमें संग्रहीत हैं। हमारे जीवन में जो कुछ घटित हो चुका है, जो घटित हो रहा है और जो भविष्य में घटित होगा, इन सभी के कारण हमारे अपने चित्त में उपस्थित हैं। अतीत, वर्तमान एवं भविष्य सभी कुछ इसमें है। संस्कार व कर्मराशि के सभी बीज इसी में हैं। हमारा वर्तमान यथार्थ इसी का एक लघुत्तम अंश है। प्रारब्ध कर्म एवं इससे जुड़े संस्कार इसकी सबसे उथली व ऊपरी परत भर है। इसी से हमारे वर्तमान जीवन के सभी घटनाक्रम निश्चित-निर्धारित होते हैं। इन्हीं संस्कारों के सम्मिश्रण से हमारे सभी सम्बन्धों का ताना-बाना बुना जाता है। हमारी रुचियों, चाहतों, लालसाओं व प्रेरणाओं में रंग इन्हीं के द्वारा भरे जाते हैं।

इस योग कथा में सूत्रकार ऋषि इस सत्य को अनेकों बार अनेकों ढंग से अभिव्यक्त कर चुके हैं। चेतन हो या अचेतन, जड़ हो या जीवन, अथवा फिर जगत का कोई भी रूप हो, प्रकृति के तीन गुणों का ही परिणाम है। प्रकृति के तीन गुणों का प्रवाह चेतन व जड़ में विभक्त होकर अनगित अनुभूतियों की सृष्टि करता है। इस सत्य को योगऋषि पतंजलि अपने अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ ४/१५ ॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शब्दार्थ= **वस्तुसाम्ये**= वस्तु की एकता में (भी); **चित्त भेदात्**= चित्त का भेद प्रत्यक्ष है, इसलिए; **तयोः**= (चित्त और उसके द्वारा देखी जाने वाली वस्तु) इन दोनों का; **पन्थाः**= मार्ग; **विभक्तः**= अलग-अलग है।

भावार्थ= चित्त और उसके द्वारा देखी जाने वाली वस्तु का मार्ग अलग है। तभी तो एक ही वस्तु चित्तभेद से भिन्न-भिन्न अनुभूति प्रदान करती है।

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र का सत्य समस्त सृष्टि में संव्याप्त है। इस जगत में अनेक दृश्य है, साथ ही इन्हें अनुभव करने वाले चित्त अनेक हैं। इन अनेक का अनेक साथ संयोग अनेकानेक अनुभूतियों की सृष्टि करता है। ये अनुभूतियाँ ही हमारे जीवन को दर्शाती हैं और परिवर्तित भी करती हैं। यहाँ तक कि एक वस्तु होने पर भी अनेक चित्त उसकी अनेक प्रकार की अनुभूति करते हैं और कई बार तो ऐसा भी होता है कि एक ही वस्तु की अनुभूति एक ही चित्त भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न ढंग से करता है।

इस सच्चाई को उदाहरण और उद्धरण की रीति से आसानी से समझा जा सकता है। इसके उदाहरण के रूप में अपने घर-परिवार की सच्चाई सामने रख लेते हैं। घर की एक महिला में परिवार के भिन्न-भिन्न पुरुष सदस्य भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ पाते हैं, एक पुरुष उसमें पत्नी का अनुभव करता है, एक उसमें माता की अनुभूति पाता है। एक को वही महिला पुत्री के रूप में अनुभव होती है, एक को उसी में बहन की अनुभूति हो पाती है। घर की महिला के रूप में वस्तु तो एक ही है, परन्तु उसे अनुभव करने वाले चित्त अनेक हैं। प्रत्येक चित्त अपनी संस्कार व कर्म व्यवस्था के अनुरूप उसकी अनुभूति पाता है। इनमें से हर एक की अनुभूति सत्य है। संस्कार व कर्म का उभार प्रत्येक चित्त की वृत्तियों को जिस रंग में रंग रहा है, उसी के अनुरूप उसे अनुभूति प्राप्त हो रही है। इस तरह वस्तु की एकता में चित्त का भेद प्रत्यक्ष हो रहा है।

अब इस सूत्र के सत्य को उद्धरण से समझने का प्रयास कर लेते हैं। चित्त में संस्कारों व कर्मराशि के अनुरूप उसमें किसी न किसी गुण का प्राबल्य रहता है। एक ही चित्त तमोगुण प्रधान हो सकता है, रजोगुण प्रधान हो सकता है और उसमें सतोगुण की प्रधानता भी हो सकती है। बस इसके लिए संस्कारों व कर्मों का परिमार्जन चाहिए। चित्तशुद्धि के क्रम के अनुसार एक वस्तु या दृश्य को अनुभव करने का ढंग भी बदल जाता है। इसे हम महायोगी भर्तृहरि के जीवन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रसंग से समझ सकते हैं। भर्तृहरि ने राजा के रूप में 'नीति शतक', एक प्रेमी के रूप में 'शृंगार शतक' एवं योगी के रूप में 'वैराग्य शतक' की रचना की। उनके द्वारा चित्त शुद्धि के प्रयास से चित्त की अवस्थाएँ बदलीं और साथ ही उनकी जीवन अनुभूतियों में भी अन्तर आया। जगत व जीवन को यदि एक वस्तु कहें तो इसे उन्होंने अपने चित्त के भेद के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपों में अनुभव किया।

उनके जीवन की कथा कहती है कि महाराज भर्तृहरि योगी बनने से पूर्व अपनी पत्नी रानी पिंगला के प्रेम पाश में बंधे थे। पिंगला में उनकी गहरी आसक्ति व मोह था। उससे दूर रहने की उन्हें कल्पना भी नहीं होती थी। इतनी गहरी आसक्ति, इतना प्रबल मोह और इतना अथाह प्रेम उनके चित्त के संस्कार व कर्म के अनुसार थे। रानी पिंगला के साथ के उनके पूर्व कर्मों ने और उससे जुड़े संस्कारों ने उन्हें उससे बांध रखा था। एक-सी अवस्था में उनके चित्त में रजोगुण का प्राबल्य था और अनुभूतियाँ भिन्न थीं। रानी पिंगला को देखते ही उनका मन शृंगार रस से आपूरित हो उठता था।

कालक्रम में चित्त में नए कर्म उभरे, नए संस्कारों का उदय हुआ। इसी के परिणाम स्वरूप महायोगी गोरखनाथ से उनकी भेंट हुई। संस्कार व कर्म के परिवर्तन से जीवन के घटनाक्रम भी परिवर्तित हुए। रानी पिंगला अपने संस्कारवश कहीं और आसक्त हो गयीं। भर्तृहरि का वैराग्य जगा और उन्होंने महल छोड़ दिया। योगसाधना करने लगे। ऐसे में गुरु गोरखनाथ ने उनके सामने शर्त रख दी कि जब तक वह अपनी महारानी पिंगला को माता पिंगला के रूप में नहीं देखेंगे, उनसे मातृभाव से भिक्षा माँग कर नहीं लाएँगे, तब तक उन्हें शिष्य बनने का सौभाग्य नहीं मिलेगा।

योगी को द्वेष मुक्त, राग मुक्त, वैर मुक्त, आसक्ति मुक्त होना चाहिए। यह सच तो भर्तृहरि को पता था। परन्तु अपनी पत्नी में माँ को देख पाना यह परीक्षा और पात्रता की पराकाष्ठा थी। अब उन्हें चित्त को रजोगुण से, रजोगुण के संस्कारों व कर्मों से मुक्त करना था। इसके लिए उन्होंने बहुत बार प्रयास किए और असफल रहे। गुरु कठोरता से परीक्षा लेते रहे और वह प्रयास के बावजूद असफल होते रहे। इस असफलता के बावजूद उनकी साधना चलती रही, चित्त को परिष्कृत करने के प्रयत्न अविराम जारी रहे। योगियों के समुदाय में उनका

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परिहास किया गया, पर वह विचलित नहीं हुए। आखिरकार उनके तप ने, उनकी गुरुभक्ति ने संस्कारों के, कर्मों के व्यूह को तोड़ दिया। चित्त से रजोगुण विसर्जित होने लगा। चित्त का अवस्था भेद प्रकट होने लगा। अब वे सतोगुण में प्रतिष्ठित हो गए। अनुभूति बदल गयी। उन्होंने रानी पिंगला को माता की श्रद्धा से देखा, उनमें जगन्माता की उपस्थिति प्रत्यक्ष कर श्रद्धा से प्रणाम करते हुए उनसे भिक्षा माँगी। अब राजा भर्तृहरि योगी भर्तृहरि बन गए। उनकी अनुभूतियाँ बदल गयीं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

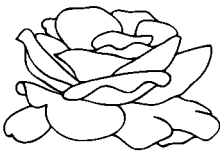

प्रकृति से भिन्न है चित का अस्तित्व

चित्त की जैसी अवस्था है, उससे होने वाली अनुभूति भी वैसी ही होती है। हम अपनी आँखों से संसार की विविध वस्तुओं एवं विभिन्न दृश्यों को देखते हैं। आँखों में यदि हरे या लाल रंग का चश्मा चढ़ा लें, तो ये रंग अपने आप ही वस्तुओं व दृश्यों पर छा जाते हैं। वस्तु व दृश्य भी हरे या लाल रंग के दिखने लगते हैं। कुछ ऐसा ही चित्त के साथ भी है। चित्त में छाए संस्कार व कर्मबीज हमारी दृष्टि व अभिरुचि को विनिर्मित करते हैं। इनकी छाया स्वयं ही हमारी अनुभूतियों में घुल जाती है। हाँ, जब हम अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों में लीन होकर चित्त को शुद्ध कर लेते हैं, तो हमारी दृष्टि एवं अनुभूति भी सम्यक् हो जाती है। ऐसी अवस्था में हम वस्तु को उसके वास्तविक रूप में देख पाते हैं, उसे अनुभव कर पाते हैं।

एक ही वस्तु को अलग-अलग चित्त अलग-अलग ढंग से अनुभव करता है। इस सच को हम सब अपने सामान्य जीवन में अनुभव करते हैं। एक वस्तु, एक विचार अथवा एक घटनाक्रम पर सभी की अलग-अलग दृष्टि व अलग-अलग अनुभूति होती है। इसका कारण बनते हैं उनके चित्त के संस्कार, उसके कर्मबीज। जो उनकी अनुभूति व दृष्टि को पृथक करते हैं। इसी आधार पर सभी की पसन्द, नापसन्द होती है। सभी के अपने-अपने दृष्टिकोण विनिर्मित होते हैं। तभी तो यह सत्य स्पष्ट किया गया है कि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त के मार्ग अलग होते हैं, जबकि वस्तु का मार्ग अलग होता है। चित्त एवं वस्तु के इस सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि ने अगले सूत्र में और अधिक स्पष्ट किया है-

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्॥ ४/१६॥

शब्दार्थ= च= इसके सिवा; **वस्तु**= दृश्य वस्तु; **एकचित्ततन्त्रम्**= किसी एक चित्त के अधीन; **न**= नहीं है (क्योंकि); **तदप्रमाणकम्**= जब वह चित्त का विषय नहीं रहेगी; **तदा**= उस समय; **किं स्यात**= वस्तु का क्या होगा?

पिछली सूत्र शृंखलाओं के क्रम में यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रकृति के गुणों से ही सब कुछ विनिर्मित हुआ है। प्रकृति और उसके गुणों के पार यदि कुछ है तो बस केवल पुरुष। वह प्रकृति का द्रष्टा है, साक्षी है। लेकिन जब वही पुरुष प्रकृति से, प्रकृति के गुणों से उपजे दृश्यों से, वस्तुओं से सम्मोहित हो जाता है। उसकी दिशा, दशा व दृश्य सब कुछ परिवर्तित हो जाता है। जन्म व जीवन का क्रम चल पड़ता है। जगत का विस्तार व प्रसार होने लगता है।

जन्म एवं जीवन का कारण चित्त बनता है। चित्त के भेद के अनुरूप जन्म एवं जीवन के भेद होते हैं। अपनी वासना, संस्कार व कर्म अनुकूल जीवात्मा अलग-अलग योनियों में भ्रमण करता है। अलग-अलग जीवन पाता है। जन्म व जीवन के रूप कितने भी हों, सभी प्रकृति के गुणों से ही विनिर्मित होते हैं। जीवन का बाह्य रूप शरीर व इन्द्रियाँ हैं। इनका निर्माण प्रकृति के तीन गुणों से हुआ है। इसी तरह चित्त और उसमें निवास करने वाली वासना, स्मृति संस्कार, कर्मराशि यह भी प्रकृति के गुणों का ही उत्पादन है। पुरुष इन सभी से सर्वकाल में मुक्त है। परन्तु अविद्या जो प्रकृति का ही सम्मोहन है, के कारण वह स्वयं को बन्धन, पाशों में जकड़ा अनुभव करता है। अपने चित्त के साथ वह यहाँ-वहाँ भटकता, भ्रमित होता और भ्रमण करता रहता है।

जन्म व जीवन की ही भाँति जगत की भी सृष्टि है। जगत का अर्थ केवल धरती नहीं है। जगत शब्द में सृष्टि का अनन्त-अनन्त विस्तार निहित है। इसका कोई ओर-छोर नहीं है। पंच भौतिक-पंचतन्मात्रक,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थूल, सूक्ष्म कितने ही लोक हैं। पुराण कथाओं में इनकी विचित्रता-विविधता का वर्णन है। पुराणों में हमें इनके बारे में कितनी ही रोचक, रोमांचक, रहस्यमय कथाएँ सुनने को पढ़ने को मिलती हैं। इनमें से बहुत सी कथाएँ हमारी बौद्धिकता व तार्किकता से मेल नहीं खातीं। इनमें से सबकी सत्यता का कोई दावा तो नहीं किया जा सकता, पर सृष्टि की विविधताओं व विचित्रताओं को देखते हुए इनमें से सब को झूठ भी नहीं कहा जा सकता।

अब तो इस सत्य को वैज्ञानिक समुदाय भी प्रमाणित करने लगा है कि प्रत्येक जीव के इन्द्रिय अनुभव की अपनी सीमा है। वह अपनी सीमा में ही देखता-सुनता और अनुभव करता है। मनुष्य और कुत्ते के इन्द्रिय अनुभव में भी भेद है। अब यह सत्य तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक है। इसी तरह जगत के अनेक सत्य जो कल तक हमारी कल्पनाओं में बसा करते थे, अब तक तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक हो गए हैं। उपग्रह, राकेटयान, अन्तरिक्षयान, दूर संचार के साधन और अब रोबोट क्रान्ति ये सभी आज तर्कपूर्ण व वैज्ञानिक हैं। आज से सौ वर्ष पहले इनमें से किसी की कल्पना कर सकना भी सम्भव नहीं था। जगत की यह समस्त रोचकता, रोमांचकता व रहस्यमयता तात्त्विक रूप से प्रकृति के तीन गुणों से ही विनिर्मित है। यदि हम जगत के सभी आयामों को संक्षेप में व सूत्र रूप में कहें तो इसमें बस कुल तीन सत्य हैं- १. जड़ता, २. सक्रियता एवं ३. इनका ज्ञान है। इसे हम अध्यात्म की भाषा में १. तम, २. रज एवं ३. सत कह सकते हैं। इसे १. पदार्थ, २. ऊर्जा एवं ३. इनका अनुभव भी कहा जा सकता है।

जीवन एवं जगत के सम्बन्ध प्रकारान्तर से चित्त एवं वस्तु के सम्बन्ध हैं। जीवन अपने-अपने ढंग से जगत की अनुभूति करता है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि चित्त की अवस्था के अनुरूप वस्तु की अनुभूति होती है। अनुभूति को ही हम बोध या ज्ञान कहते हैं। प्रत्येक जीवन में इसकी सीमा है। इस सीमा के बाहर जीवन को जगत का अनुभव हो या न हो, पर जगत का अस्तित्त्व बना रहता है। इसी तरह कहा जा सकता है कि चित्त अपनी अवस्था के अनुरूप एक काल में वस्तु का अनुभव करता है। परन्तु जब

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त को वस्तु की अनुभूति नहीं हो रही, उस समय भी वस्तु का अस्तित्त्व बना रहता है।

वस्तु या जगत किसी एक चित्त के आधीन नहीं है। प्रकृति के तीन गुणों ने जगत का अति व्यापक निर्माण किया है। इसके अनन्त विस्तार में अनन्त-अनन्त वस्तुएँ, पदार्थ व साधना है। इसमें सभी कुछ है, परन्तु सबके लिए सब कुछ नहीं है। सब को सब कुछ मिलता भी नहीं है। जीवन और जगत के मेल के लिए प्रकृति के अदृश्य नियम एवं अदृश्य व्यवस्था है। वासना के साथ शुभ व अशुभ कर्मों का परिपाक व परिणाम होता है। तब उसके अनुकूल परिस्थितियाँ, परिदृश्य व घटनाक्रम घटित होते हैं। इनका प्रभाव किसी एक चित्त के लिए एक विशेष समय तक होता है। कालक्रम में चित्त की अवस्था परिवर्तन के साथ ये संयोग परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि ऐसे में उनका अस्तित्त्व नहीं रहता। इनका अस्तित्त्व बना रहता है, बस उस चित्त के लिए नहीं रहता। इसका संयोग कर्मानुसार, प्रकृति के नियमानुसार किसी और के लिए हो जाता है। जीवन व जगत का यह संयोगक्रम, चित्त व वस्तु का यह परस्पर सम्बन्ध व बिछोह चलता रहता है। चित्त पर वस्तु के पथ बदलते रहते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त में समाहित मनोविज्ञान

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त को राग-द्वेष से मुक्त करते हैं। ऐसा होने पर न तो किसी से प्रीति होती है और न बैर। सबके प्रति समान भाव हो जाता है। अन्तर्चेतना सहज ही सबसे अपनेपन का आनन्द अनुभव करती है। निन्दा और स्तुति बच्चों के तोतले बोल बन जाते हैं। इनसे थोड़ी देर के लिए मनोरंजन तो होता है, पर इनमें किसी अर्थ, गाम्भीर्य की अनुभूति नहीं होती। निन्दा सुनकर न तो मन खिन्न होता है और न ही स्तुति सुनकर किसी प्रसन्नता की अनुभूति हो पाती है। ऐसी अवस्था में इन्द्रियाँ वस्तु, दृश्य अथवा घटनाक्रम से परिचय तो अवश्य कराती हैं, लेकिन इस परिचय से भावनात्मक विक्षोभ अथवा वैचारिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं बनती। अन्तर्चेतना में सतत यह अनुभूति बनी रहती है कि आसक्ति के साथ मिलने वाला ज्ञान हमेशा ही अन्तर्चेतना में मल की परतें जमाता चला जाता है, जबकि राग-द्वेष विहीन अवस्था में मिलने वाला ज्ञान प्रत्येक अवस्था में अन्तर्चेतना को निर्मल करता जाता है।

यह सर्वविदित है कि चित्त एवं वस्तु के सम्बन्ध ही चित्त को वस्तु का ज्ञान देते हैं। यह सत्य स्वयं प्रकट हो जाता है कि चित्त एवं वस्तु का सम्बन्ध होने से चित्त को वस्तु का ज्ञान होता है। परन्तु इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि चित्त की सत्ता पृथक है और वस्तु की पृथक। जब चित्त

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किसी वस्तु से सम्बन्धित नहीं होता, उस समय भी उसका अस्तित्त्व बना रहता है। वस्तु का सत्य और सत्ता चित्त के अभाव में भी बने रहते हैं।

चित्त एवं वस्तु के सम्बन्ध को सूत्रकार महर्षि अपने अगले सूत्र में और अधिक स्पष्टता देते हैं-

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम्॥४/१७॥

शब्दार्थ= **चित्तस्य**= चित्त; **तदुपरागापेक्षित्वात्**= वस्तु के उपराग (अपने में उसका प्रतिबिम्ब पड़ने) की अपेक्षा वाला है, इस कारण (उसके द्वारा); **वस्तुः**=वस्तु; **ज्ञाताज्ञातम्**= कभी ज्ञात और कभी अज्ञात होती है, यह सर्वथा उचित है।

भावार्थ= चित्त पर वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ने से वस्तु का ज्ञान होता है। इसीलिए वस्तु कभी ज्ञात होती है और कभी अज्ञात होती है।

इन्द्रियों के सम्पर्क में जो वस्तु आती है, उसकी परछाई चित्त में पड़ती है। इसी से चित्त को उस वस्तु का ज्ञान हो पाता है। जो वस्तु इन्द्रियों के सम्पर्क में नहीं आती है और जिसकी परछाई चित्त में नहीं पड़ती, उस वस्तु का ज्ञान चित्त को नहीं हो पाता। चित्त को वस्तु का ज्ञान होने के लिए उसके उपराग (परछाई) की अपेक्षा है। इसलिए जब उस वस्तु का उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, यानि कि इन्द्रियों के द्वारा चित्त से जब वस्तु का सम्बन्ध होता है, उस समय वह वस्तु उसे ज्ञात होती है और जिस समय वह उसकी वृत्ति का विषय नहीं बनती अर्थात् वह चित्त में उपरञ्जित नहीं होती, उस समय वह वस्तु उसके लिए अज्ञात हो जाती है।

इस सूत्र में सार रूप में मानसिक प्रक्रियाओं का सार ज्ञान है। इसे सम्पूर्ण मनोविज्ञान की आधारशिला के रूप में अनुभव किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान का अल्प ज्ञान रखने वाले भी परसेप्शन (इन्द्रियबोध), काग्नीशन (मानसिक संज्ञान), इमोशन (भाव प्रक्रिया), थॉट प्रासेस (विचार प्रक्रिया) एवं बिहैवियर (व्यवहार) से सहजता से परिचित हैं। इन सबको इस सूत्र के प्रसंग व सन्दर्भ में समझने से सूत्र का अर्थ और भी प्रकट हो जाता है और सरलता से हमें हमारी जीवन प्रक्रिया भी स्पष्ट हो जाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अब इनमें सबसे पहले परसेप्शन (इन्द्रिय बोध) पर विचार करते हैं। बचपन से हम सबको संसार व संसार की सब वस्तुओं व दृश्यों का परिचय इन्द्रियों से मिलता है। जो हम देखते हैं, सुनते हैं, छूते हैं, सूँघते हैं अथवा चखते हैं, उसी से उसकी अनुभूति पाते हैं। इस अनुभूति के आधार पर हमें उसमें सुखद अथवा दु:खद अहसास होते हैं। इन्हीं के आधार पर हम निर्णय करते हैं कि हमें उस वस्तु की दुबारा अनुभूति पानी है अथवा नहीं।

इन्द्रिय के बोध यानि कि परसेप्शन के बाद की सारी प्रक्रियाएँ कॉग्नीशन (मानसिक संज्ञान) से सम्पन्न होती हैं। इन्द्रियों से जो हम परिचय पाते हैं, इन्द्रियों के द्वारों और झरोखों से अनुभव होने वाली वस्तु या दृश्य का बिम्ब हमारे मन अथवा चित्त में बनता है। इस बिम्ब के साथ हमारी पूर्व स्मृतियों व संस्कारों के अनुरूप भाव जुड़ते हैं तथा विचार की प्रक्रिया आरम्भ होती है। चिन्तन, मनन, विश्लेषण, तर्क, अभिरुचि, सुखप्रद अथवा दु:खप्रद सभी अहसास सभी यहीं पर जुड़ जाते हैं और तब कहीं जाकर हमें उस वस्तु का एक ज्ञानात्मक निष्कर्ष मिलता है। इस निष्कर्ष को ही हम ज्ञान कहते हैं। यह हमारा अपना अनुभव होता है, जिसके आधार पर हम उस वस्तु पर अपना मत या विमत प्रकट करते हैं।

हमारे अपने द्वारा इस अनुभूत ज्ञान के आधार पर ही हमारे अगले इमोशन (भाव) एवं थॉट (विचार) प्रभावित व पोषित होते हैं। इसी के आधार पर हमारी अगली रुचियाँ विनिर्मित होती हैं। हमारे राग व द्वेष, प्रीति या बैर, प्रसन्नता अथवा खिन्नता विकसित व विनिर्मित होती हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के आधार पर हमारा बिहैवियर (व्यवहार) विकसित होता है। इस समूची प्रक्रिया के मूलत: दो ही आधार होते हैं- १. परसेप्शन (इन्द्रियबोध) एवं २. कॉग्नीशन (मानसिक संज्ञान अथवा चित्त का ज्ञान) इन्हीं दो की फलश्रुतियाँ हमारे व्यवहार में प्रकट होती हैं।

हमारा यह व्यवहार कैसा है, हमारे चित्त में जीवन व जगत की समझ व ज्ञान कितना विकसित हो पाया है और किस रूप में विकसित हो पाया है, यही हमारे भविष्य कर्मजाल का निर्माण करता है और हमारे नए जन्म व जीवन को तय करता है। इस सबके पीछे होती है हमारे अपने चित्त की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अवस्था। क्या यह परिष्कृत है अथवा यह अपरिष्कृत है? परिष्कृत अवस्था में हम राग-द्वेष से बचे रहते हैं। जीवन व जगत में अनासक्त रहकर कर्म करते हैं। ऐसी अवस्था में चित्त पर वस्तु का, दृश्य का अथवा घटनाक्रम का बिम्ब तो पड़ता है, उसके स्वरूप व प्रकृति का ज्ञान भी होता है, परन्तु उसके संस्कार नहीं बनते हैं। उसकी स्मृतियाँ गहरी नहीं होतीं। उसका प्रभाव तत्काल तो होता है, लेकिन दीर्घस्थायी नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में हम कर्मपाश अथवा कर्मबन्धन से बचे रहते हैं।

इसके विपरीत स्थिति में अर्थात् चित्त की अपरिष्कृत स्थिति में चित्त और वस्तु का सम्पर्क-सम्बन्ध चित्त में वस्तु ज्ञान के साथ मलिनताएँ व संस्कारों को भी जन्म देता है। इनसे नए कर्म भी विनिर्मित होते हैं, जो नए जन्म की या नए जन्मों की शृंखला को भी उत्पन्न करते हैं। फिर स्थिति की निरन्तरता बनी रहती है। यह कभी भी नहीं थमती। ऐसी स्थिति में उपाय एक ही है कि चित्त की परिष्कृति अनवरत बनी रहे। चित्त राग-द्वेष से मुक्त रहे। ऐसा होने पर जो ज्ञान होता है, वह बन्धन का कारण नहीं बनता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

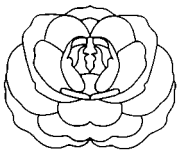

चित्त का स्वामी व ज्ञाता है पुरुष

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त के परिष्कार के लिए हैं। योग साधना की समूची यात्रा चित्त के परिष्कार की यात्रा है। इस ओर गमन करते ही सब कुछ स्वत: ही घटित होने लगता है। परिष्कार-प्रकाश में, विभूति में व बोध में परिवर्तित होने लगता है। संस्कारों की सांकलें, कर्म की जटिल गाँठें अपने आप खुलने लगती हैं। सारे बन्धन स्वयं ही मुक्ति के मार्ग में बदलने लगते हैं। ये सारे परिवर्तन चित्त में घटित होते हैं। पुरुष अथवा जीवात्मा तो अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है। वह सभी परिणामों से परे, अपरिणामी है। परिष्कृत होने के पश्चात् चित्त ज्ञान के स्रोत के रूप में भले ही भासने लगता है। लेकिन वास्तविकता व यथार्थता सदा यही रहती है कि ज्ञान का स्रोत पुरुष ही होता है। हालाँकि यह ज्ञान भी चित्त के शुद्ध व परिष्कृत होने पर ही होता है।

चित्त में वस्तु का उपराग अर्थात् उसका बिम्ब पड़ने से वस्तु का ज्ञान होता है। यदि वस्तु का बिम्ब न पड़े तो उसका ज्ञान नहीं हो पाता। इसीलिए वस्तु कभी ज्ञात होती है और कभी अज्ञात बनी रहती है। ज्ञान की इस प्रक्रिया में इन्द्रियाँ माध्यम बनती हैं। इन्द्रियों के झरोखे से चित्त में वस्तु, व्यक्ति, दृश्य अथवा घटनाक्रम प्रतिबिम्बित होते हैं। इन्द्रियाँ न हों या फिर सक्रिय या क्रियाशील न हों तो बाह्य जगत से सम्पर्क अथवा सम्बन्ध नहीं हो पाता। ऐसे में उसके ज्ञान की सम्भावना क्षीण हो जाती है। इसीलिए इन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रियों व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कर्मेन्द्रियों के रूप में कहा गया है। ये इन्द्रियाँ, जीवात्मा के बाह्य कारण हैं। जबकि चित्त अन्त:करण है। ये दोनों पुरुष की क्रियाशीलता का माध्यम हैं। इन्द्रियों का आधार यदि चित्त है तो चित्त का आधार पुरुष अथवा जीवात्मा है।

इस सत्य को योगऋषि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में प्रकट किया है-

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभो: पुरुषस्यापरिणामित्वात्॥ ४/१८॥

शब्दार्थ= **तत्प्रभो:**= उस (चित्त) का स्वामी; **पुरुषस्य**= पुरुष; **अपरिणामित्वात्**= परिणामी नहीं है, इसलिए; **चित्तवृत्तय:**= चित्त की वृत्तियाँ, (उसे); **सदाज्ञाता:**= सदा ज्ञात रहती हैं।

भावार्थ= उस चित्त का स्वामी पुरुष परिणामी नहीं है। इसलिए चित्त की वृत्तियाँ उसे सदा ज्ञात रहती हैं।

चित्त का जब बाहर के विषय के साथ सम्बन्ध होता है, तो वह उसको ज्ञात होता है और जब सम्बन्ध नहीं होता, तो अज्ञात होता है। इसलिए वह कभी बाहर के विषय को जानता है कभी नहीं जानता। वह जानने-न जानने दोनों अवस्थाओं में बदलता रहता है। यह उसमें परिणाम होता रहता है। इसलिए वह परिणामी है। पर पुरुष में वह परिणाम नहीं होता। वह सदा चित्त की वृत्तियों का साक्षी है। चाहे उसमें कोई विषय हो या न हो। चित्त का कार्य केवल इतना नहीं है कि वह जिस विषय से उसके आकार में परिणत होकर उसके स्वरूप को अपने स्वामी चिति अथवा पुरुष के सामने रख दे। पुरुष को चित्त के ऐसे परिणाम का सदा ही ज्ञान बना रहता है। इस ज्ञान से पुरुष में चित्त की भाँति कोई परिणाम नहीं होता अर्थात् चित्त के विषय विभिन्न वस्तुएँ व विविध दृश्य हैं, जबकि पुरुष का विषय वृत्ति सहित चित्त है।

विषयों की विविधता होते हुए चित्त कभी उन विषयों को जानता है और कभी नहीं जानता। लेकिन पुरुष अपने चित्त को वृत्ति सहित सर्वदा जानता है। यदि कभी न जानता तो परिणामी होता। अपने काम में सदा जानी हुई भोग्य रूप चित्त वृत्तियाँ ही भोक्ता पुरुष को परिणाम शून्य बनाती हैं। चित्त से होने वाले ज्ञान में उपराग अथवा बिम्ब की आवश्यकता है, लेकिन पुरुष के ज्ञान में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो ज्ञाता मात्र है। इसी के साथ चित्त जड़ है, जबकि पुरुष चेतन और ज्ञान चेतना में ही सम्भव है, जड़ता में नहीं। हालाँकि जिस प्रकार हम लोहे को अग्नि में डालते हैं, तो वह भी प्रकाश पूर्ण लगने लगता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है। लेकिन यह स्थिति तभी तक रहती है, जब तक लोहा अग्नि में तपता रहता है। वैसे ही पुरुष के साथ सम्बन्ध होने से चित्त भी ज्ञानपूर्ण हो जाता है। इसीलिए चित्त में ज्ञान की अनुभूति होने लगती है। तभी कहीं-कहीं चित्त की परिष्कृत अथवा शुद्ध अवस्था में उसे प्रकाशपूर्ण व ज्ञानपूर्ण कहा गया है।

तभी तो 'मसि कागद छुयो नहि, कलम गह्यो नहि हाथ' की घोषणा करने वाले बाबा कबीर बिना पढ़े-लिखे ही परम ज्ञानी होने की कथा सुनाया करते थे। इस कथा को सुनाते हुए उन्होंने कहा- बचपन में कबीर में ज्ञान पाने की बहुत चाह थी। लेकिन वे पढ़ते कहां से, उनके पास तो पढ़ने के कोई साधन न थे। फिर उनका कोई कुल-गोत्र न था और न ही समाज में कोई स्थान था, ऐसे में उन्हें पाठशाला में कोई भरती कैसे करता? ज्ञान पाने में संकट बड़े थे, परन्तु चाहत उससे भी बड़ी थी। उन्होंने आस-पास के लोगों से सुन रखा था कि स्वामी रामानन्द महाराज बड़े ज्ञानी हैं। वे चाहे तो उनकी कृपा से ज्ञान हो सकता है। बस उन्होंने उनकी कृपा पाने की ठान ली। लेकिन रामानन्द के पास पहुँचना और मिलना बड़ा मुश्किल था।

इस मुश्किल को हल करने के लिए कबीर वाराणसी में गंगाघाट की सीढ़ियों में ब्रह्ममुहुर्त में जाकर लेट गए। रामानन्द नित्य गंगा स्नान के लिए जाते थे। उस दिन जब वह गए, तब अंधेरे में उनका पाँव घाट की सीढ़ियों पर लेटे कबीर पर पड़ गया। उन्होंने राम नाम का उच्चारण करते हुए कहा- ''अरे कौन हो तुम?'' तब कबीर ने उन्हें अपना नाम बताया। साथ ही यह भी कहा- ''वह ज्ञान पाना चाहते हैं।'' उस बालक की जिज्ञासा देखकर उन्होंने कबीर को दिन में अपने पास बुला लिया। जब कबीर दिन में उनके पास पहुँचे तो उन्होंने उनसे पूछा- ''अच्छा बताओ, तुम सच्चा ज्ञान चाहते हो या झूठा।'' मन के खरे कबीर हमेशा खरा कहने में, खरा करने में और खरा पाने में भरोसा करते थे। खोटेपन में उनकी कोई रुचि न थी। सो उन्होंने तत्काल कह दिया- ''बाबा! सच्चा ज्ञान चाहता हूँ।'' इस पर रामानन्द ने हँस कर कहा- ''तब हो जाएगा। सारी मुश्किलें झूठे ज्ञान में हैं, सच्चे ज्ञान में कोई मुश्किल ही नहीं।''

रामानन्द ने उन्हें समझाते हुए कहा- ''इन्द्रियों से जो हम अनुभव करते हैं, मन से जो सोचते-समझते हैं, हमें उसी का ज्ञान होता है। यह ज्ञान की सामान्य विधि है। इसके अलावा एक विधि और भी है यदि तरंगित मन, चंचल मन शान्त

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हो जाए, तो शान्त मन में स्वत: ज्ञान होने लगता है।'' यह सुनने पर कबीर ने कहा- ''लेकिन बाबा मन का शान्त होना तो बड़ा कठिन है। लेकिन सब कुछ भगवान पर छोड़कर भगवान की शरण पकड़ोगे तो आसान भी है।''

कबीर को यह बात समझ में आ गयी। उन्होंने सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया। इससे उन्हें स्थिरता भी मिली और निश्चिन्तता भी। ईश्वरशरणागति का सूत्र उनके जीवन में ज्ञान का सत्य बनने लगा। उन्हें पता चल गया मन शान्त होने पर अपने आप शुद्ध भी हो जाता है। शान्त व परिष्कृत मन में पुरुष या आत्मा अपने आप ही प्रतिबिम्बित हो गयी और तब उन्हें इस सत्य का बोध हो गया कि वास्तव में ज्ञान का स्रोत मन नहीं स्वयं आत्मा है। बस इसी बोध ने उन्हें ज्ञानी बना दिया।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

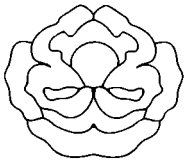

स्वप्रकाशित नहीं है चित्त

सामान्य जीवन में हम व्यवहार करते हैं, इसमें हमारे मनोभाव प्रकट होते रहते हैं। रुचियाँ, दृष्टिकोण, चिन्तन सभी कुछ इसमें अभिव्यक्त होते हैं। इन्द्रियों से होने वाले अनुभव, कर्म, कर्त्तापन का अभिमान, स्वयं को औरों को पृथक समझने वाला अहं, सबकी अनुभूति हर दिन होती रहती है। हम चेतना शब्द न केवल उच्चारण करते हैं, बल्कि चेतन होने का अनुभव भी करते हैं। जीवन के एक-एक तल, एक-एक स्तर की सूक्ष्मताओं का अहसास पाने के बावजूद चेतना या चेतन तत्त्व को समझने में तनिक मुश्किल होती है। शरीर, प्राण व मन को तो हम आसानी से समझ लेते हैं, पर यहीं आकर हम अटक जाते हैं। मन के पार क्या कुछ है, मन को जड़ कहें या चेतन, इसमें स्पष्टता नहीं होती। इसका कारण सम्भवत: यह है कि मन की देहरी के पार हमारी अनुभूतियाँ प्रवेश नहीं कर पाती।

इस योगकथा में मन या चित्त को गहराई से समझने का प्रयास किया गया है। सूत्रकार महर्षि ने इसे स्पष्ट करने के लिए कई सूत्र कहे हैं। चित्त तो परिणामी है, इस कारण वह बाहर की वस्तुओं को सदा नहीं देख सकता। जब जिस वस्तु का उसके साथ सम्बन्ध होता है, तभी वह उसे देखता है। किन्तु चित्त का स्वामी जो पुरुष है, वह अपरिणामी है। इस कारण न तो उसमें कोई परिणाम उपजते हैं और न ही वह स्वयं किसी प्रक्रिया का परिणाम है। इस वजह से वह चित्त की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वृत्तियों को सदैव देखता रहता है। जिस समय जो वृत्ति चित्त में उत्पन्न होती है और जो शान्त होती है, सभी का उसे ज्ञान रहता है। इस तरह चित्त की प्रत्येक गतिविधि का उसे ज्ञान रहता है।

इस प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं-

न तत्स्वभासं दृश्यत्वात्॥ ४/१९॥

शब्दार्थ= **तत्**= वह (चित्त); **स्वाभासम्**= स्वप्रकाश (प्रकाशस्वरूप); **न**= नहीं है; **दृश्यत्वात्**= क्योंकि वह दृश्य है।

भावार्थ= वह चित्त स्वप्रकाशित नहीं है क्योंकि वह दृश्य है।

यह संसार जड़ और चेतन का मिला-जुला स्वरूप है। जड़ क्या है और चेतन क्या है ? इसे समझना आसान है और कठिन भी । हम बड़ी आसानी से पत्थर के टुकड़े को जड़ कह देते हैं और जीव-जन्तुओं एवं वृक्ष-वनस्पति को चेतन मान लेते हैं लेकिन बात इतने तक नहीं रुकती। एक हरे-भरे वृक्ष के चेतन होने की बात हमें आसानी से समझ में आ जाती है। लेकिन बाद में जब वृक्ष सूख जाता है अथवा उसे काट दिया जाता है, तब उसकी लकड़ी के टुकड़ों को हम आसानी से चेतन नहीं कह पाते। ये लकड़ी के टुकड़े अथवा उनसे विनिर्मित फर्नीचर बस केवल जड़ होते हैं। यह सत्य केवल वृक्ष-वनस्पतियों तक सीमित नहीं है। जीव-जन्तुओं पर भी यही बात लागू होती है।

छोटे या बड़े जीव जब तक सक्रिय या क्रियाशील होते हैं तब तक हम उन्हें चेतन मानते हैं। लेकिन उनके मर जाने पर उनके शरीर अथवा शरीर के अवशेषों को हमें जड़ कहना या मानना पड़ता है। सामान्य जीवों के अथवा मनुष्यों के जीवित रहने पर उन्हें चेतन कहने में कोई समस्या नहीं होती। परन्तु इनके मर जाने पर शरीर को किसी भी स्थिति में चेतन नहीं कह सकते। ऐसी स्थिति में यदि हमें स्वयं के जीवन को परिभाषित करना हो, तो यही कहना पड़ता है कि हमारा यह जीवन जड़ व चेतन का सम्मिश्रण है। लेकिन सवाल यह उठे कि इसमें क्या जड़ है और क्या चेतन ? तो उत्तर में हम आसानी से कह देते हैं कि शरीर जड़ है। पंचभूतों का संघात है। तब इसमें ऊर्जा या क्रियाशीलता का स्रोत क्या है ? ऐसे में हमारा उत्तर होता है- प्राण। जिसे भोजन, वायु, जल व प्रकाश पोषित करते हैं। इसके पार है हमारा मन या चित्त, जो हमारे चिन्तन या ज्ञान की अनुभूति का प्रदाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तब क्या यह चित्त ही चेतना है ? इस प्रश्न का उत्तर ही इस सूत्र का मर्म है। सूत्रकार महर्षि कहते हैं कि चित्त भले ही चेतन प्रतीत हो, पर वह स्वयं चेतन नहीं। हम भले ही इसे ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित अनुभव करें, लेकिन यह प्रकाश पूर्ण नहीं है। ऐसी स्थिति में यह प्रकाशपूर्ण क्यों लगता है ? इस सवाल का उत्तर हम अपने सामान्य जीवन के किसी उदाहरण में पा सकते हैं, जैसे कि लैम्प। हम जानते हैं कि लैम्प में शीशा होता है, जिसके अन्दर एक बत्ती जलती रहती है। यदि शीशा साफ होता है तो बहुत तीव्रता से उस बत्ती के प्रकाश को चारों ओर बिखेरता है। दिखने में ऐसा लगता है कि लैम्प के शीशे से प्रकाश आ रहा है। कुछ अर्थों में यह सही भी है। क्योंकि लैम्प के शीशे से ही बत्ती का प्रकाश चारों ओर फैलता है।

इतने पर भी शीशा स्वप्रकाशित नहीं है। वह सिर्फ लैम्प के अन्दर जलने वाली बत्ती का प्रकाश बिखेरता है। स्वप्रकाशित अथवा प्रकाश का वास्तविक स्रोत तो जलने वाली बत्ती है। इसके अभाव में शीशा न तो स्वयं प्रकाशित होगा और न ही प्रकाश को बिखेर सकेगा। हाँ, यह सच है कि शीशे में यदि धुएँ की परत चढ़ जाए तो उसके प्रकाश बिखेरने की क्षमता कम हो जाती है, यहाँ तक कि बहुत कम और समाप्त प्राय हो जाती है। लैम्प की बत्ती जलते रहने पर भी उसका प्रकाश बाहर नहीं आ पाता। प्रकाश पाने के लिए हमें फिर से लैम्प के शीशे को धुएँ की कालिख से मुक्त करना पड़ता है। उसे साफ करना पड़ता है।

पुरुष व चित्त का सम्बन्ध भी कुछ इसी तरह से है। पुरुष जीवन के लैम्प में अनवरत प्रकाशित होने वाली ज्योति है। और चित्त इस जीवन के लैम्प का शीशा। पुरुष या आत्मज्योति स्वप्रकाशित है। यह स्वचेतन है। इसे प्रकाश व चेतना का स्रोत कह सकते हैं। इसी का प्रकाश चित्त के शीशे से बिखरता है। इसी से जीवन का उसका परिदृश्य प्रकाशित व चेतना पूर्ण होती है। चित्त के परिष्कृत होने से, इसके शुद्ध होने से प्रकाश की तीव्रता अतिशय बढ़ जाती है। यहाँ तक कि यह चित्त प्रकाश का स्रोत लगने लगता है। लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न होती है। द्रष्टा पुरुष के लिए चित्त एक दृश्य है। चेतन पुरुष के लिए चित्त त्रिगुण प्रकृति द्वारा निर्मित जड़ उत्पादन है।

काल प्रवाह में ऐसा भी होता है कि संस्कारों की स्याही से, कर्म की कालिख से चित्त की प्रकाश बिखेरने की क्षमता कम हो जाती है। तब वह पुरुष

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अर्थात् आत्मा की चेतना, ज्ञान व प्रकाश को बिखेरने में अक्षम हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा को चित्त की स्थिति के अनुरूप निम्न योनियों में जाना पड़ता है। अथवा मानव योनि में रहते हुए भी दुर्गति व दुर्भाग्य को भोगना पड़ता है। मूढ़ता व अज्ञान के दंश को झेलना पड़ता है। स्थितियाँ तब बदलती हैं, जब चित्त पुनः परिष्कृत होने की ओर चल पड़ता है। जैसे-जैसे चित्त संस्कारों व कर्मों से मुक्त होने लगता है, उसके द्वारा ग्रहण किए गए जीवन की स्थिति बदलने लगती है। चित्त शुद्धि के क्रम में जीवन अपने आप ही उन्नत सोपानों पर चढ़ने लगता है। फिर से सुख, सौभाग्य, ज्ञान, प्रकाश के अनुदान उसे मिलने लगते हैं। चित्त की शुद्ध अवस्था ही जीवन में उपलब्धियों, शक्तियों, सिद्धियों व विभूतियों की अवस्था है। परिष्कृत होने पर भले ही चित्त प्रकाश व चेतना का स्रोत लगने लगे, लेकिन वास्तविकता में वह जड़ ही रहता है। द्रष्टा पुरुष के लिए चित्त ही दृश्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एक समय में एक ही ज्ञान प्रकट होता है चित्त में

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त के गुण-धर्म से अवगत कराते हैं। उसकी सूक्ष्मताओं को स्पष्ट करते हैं। चित्त दर्पण की भाँति है। दर्पण में जिस वस्तु, व्यक्ति अथवा दृश्य की प्रतिच्छाया पड़ती है, वह उसमें दिखने लगता है। यह प्रतिबिम्ब कैसा होगा? यह दर्पण की स्थिति पर निर्भर करता है। दर्पण सम्पूर्णतया स्वच्छ हो, तो उसमें पड़ने वाला प्रतिबिम्ब उसकी यथार्थता का, वस्तु के सत्य का बोध कराने में समर्थ होता है। लेकिन यदि दर्पण में धूल की परत चढ़ गयी हो तो बिम्ब हल्का व धूल के कारण धुँधला हो जाता है। इसमें स्पष्टता का अभाव हो जाता है। यदि धूल की परत गाढ़ी हो, तो बिम्ब भी उतना ही अस्पष्ट होने लगता है। इसे समझने में भ्रम व भ्रान्तियाँ होने लगती हैं। सत्य समझ में नहीं आता। ऐसी स्थिति में समझदारी कहती है कि दर्पण को स्वच्छ किया जाए। चित्त की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। इसमें जितनी स्वच्छता व शुद्धता होती है, इससे मिलने वाला ज्ञान उतना ही स्पष्ट व निभ्रान्ति होता है।

चित्त स्वप्रकाश अर्थात् अपने आपको जानने वाला-प्रकाश स्वरूप नहीं है। उसमें जो चेतना दिखलाई देती है, जिसके कारण वह किसी अंश में चेतन जान पड़ता है, वह चेतना उसमें चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ने से है। जब चित्त में बाह्य वस्तु और चेतन पुरुष- इन दोनों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस समय पुरुष चित्त की वृत्तियों के रूप में तद्रूप-सा रहता है और चित्त चेतना पूर्ण प्रतीत होने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लगता है। लेकिन इसकी वास्तविकता यही है कि जैसे इन्द्रियाँ और शब्द आदि विषय दृश्य होने के कारण स्वप्रकाशित नहीं है। ठीक यही दशा चित्त की है। चित्त भी दृश्य होने के कारण दृश्य है, इसे स्वप्रकाशित नहीं कहा जा सकता।

चित्त के इसी सत्य को सूत्रकार महर्षि अपने अलगे सूत्र में और भी स्पष्ट करते हैं-

एकसमये चोभयानवधारणम्॥ ४/२०॥

शब्दार्थ= च= तथा; **एकसमये**= एक काल में; **उभयानवधारणम्**= (चित्त और उसका विषय)- इन दोनों के स्वरूप को जानना भी नहीं हो सकता है।

भावार्थ= एक समय में चित्त और उसके विषय दोनों के स्वरूप का ज्ञान चित्त को नहीं हो सकता।

प्राय: हम मन के साथ बहते हैं, उसके साथ प्रवाहित होते हैं। हम शरीर से भिन्न हैं, इस सच को तो यदा-कदा हम समझ लेते हैं। लेकिन हम मन से अलग हैं, उसे सामान्य क्रम में हम नहीं समझ पाते। इसीलिए मन के विचार हमें तरंगित करते हैं। मन की लहरें हमें उठाती-गिराती रहती हैं। हम इन लहरों के हिंडोले में झूलते रहते हैं। मन के बादलों के साथ हम एकाकार हो जाते हैं। कई बार सफेद बादलों के साथ, कई बार काले बादलों के साथ। कई बार वर्षा से भरे बादलों के साथ तो कई बार वर्षा से खाली बादलों के साथ। ऐसे में हमारी स्थिति क्षण-क्षण बदलती रहती है, परिवर्तित होती रहती है।

मन के बादलों में खोये हुए हम, मन के विचारों में भटकते हुए हम आकाश की शुद्धता को गवाँ देते हैं। हम ऐसे में भूल जाते हैं कि मन के ये बादल आखिरकार उमड़ते-घुमड़ते तो आकाश में ही हैं। हम बादलों से घिरते रहते हैं, बादलों का यह घिराव घटित होता रहता है, मन के साथ हम खोए रहते हैं। ऐसे में हम न तो मन को समझ पाते हैं और न ही स्वयं को। सत्य कोई भी हो वस्तु का अथवा दृश्य का, उसे समझने के लिए स्वयं को उससे अलग करना पड़ता है। तभी हम उसकी यथार्थता को, वास्तविकता को अनुभव कर पाते हैं।

मन के इस स्वरूप को, इसके सत्य को बताने वाली योगवाशिष्ठ की एक कथा है। इस कथा को योगवाशिष्ठ ग्रन्थ में भास-विलास सम्वाद के रूप में जाना जाता है। यह कथा कहती है कि विंध्याचल पर्वत पर अत्रि मुनि के आश्रम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के पास दो मुनि रहते थे। उनके भास व विलास नाम के दो पुत्र थे। उन दोनों में एक दूसरे के प्रति घनिष्ठ प्रेम था। दोनों एक-दूसरे से कभी अलग नहीं होते थे। दोनों का रहना-खाना-पीना साथ होता था। इसी प्रकार साथ रहते-रहते उन दोनों के माता-पिता की मृत्यु हो गयी। दोनों ने मिलकर उनका अन्तिम संस्कार किया। माता-पिता द्वारा दिए गए संस्कार के कारण उनमें आत्मज्ञान की प्रबल अभिलाषा थी। परन्तु उन्हें कोई मार्ग दिखाने वाला नहीं था। ऐसे में उन्होंने स्वयं ही आत्मानुसन्धान करने का निश्चय किया। इस निश्चय के साथ दोनों भिन्न दिशाओं की ओर चले गए।

उन्होंने आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषण, आत्मनिरीक्षण व आत्मपरिष्कार के लिए अनेकों प्रयास किए। संसार को और स्वयं को पहचानने की कोशिश की। इस प्रयास में उन्हें अनेकों अनुभव हुए। कुछ समय बाद वे दोनों अचानक एक ही स्थान पर आ मिले। बहुत दिनों बाद एक-दूसरे को देखकर उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ। विलास ने भास से पूछा- ''भाई भास! आज बहुत दिनों के बाद मिले हो। तुम्हें इस तरह देखकर बहुत खुशी हो रही है। इतने दिन तुमने कैसे बिताए?'' इसके उत्तर में भास ने कहा- ''इन दिनों को मैंने स्वयं को जानने व समझने में बिताया।'' भास के इस उत्तर को सुनकर विलास की जिज्ञासा तीव्र हो उठी। उसने कहा- ''मैं तुम्हारे अनुभवों से परिचित होना चाहता हूँ।''

तब भास ने कहा- ''मैंने जाना है कि संसार में अनेकों घटनाक्रम उभरते हैं और मिट जाते हैं। इसी तरह मन में भी अनेकों दृश्य व विचार उभरते व समाप्त होते हैं। यह संसार यदि बाह्य संसार है, तो मन में एक आन्तरिक संसार बसता है। बल्कि संसार व मन एक ही सत्य के दो बाहरी और आन्तरिक पहलू हैं। इन दोनों को देखने वाला- इन दोनों में क्रियाशील होने वाला सत्य कुछ और ही है। यह संसार व मन दोनों से भिन्न है। संसार व मन में कितनी ही चेतनता दिखाई पड़े, परन्तु चेतन कोई और ही है।''

भास की इन बातों को सुनकर विलास ने कहा- ''मन से तो सभी का ज्ञान होता है। क्या मन का भी कोई ज्ञाता है।'' इस पर भास ने कहा- ''मन में संसार की वस्तुओं की प्रतिच्छाया पड़ती है, इसी से मन इनको जान पाता है। लेकिन मन वस्तुओं के प्रतिबिम्ब व स्वयं को एक साथ नहीं जान पाता। साथ ही मन का ज्ञान, सीमित, खण्डित व अपूर्ण हो जाता है। लेकिन इस सच को हम मन के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साथ प्रवाहित होने के कारण नहीं जान पाते। जब हम मन से अलग हटते हैं, मन के साक्षी बनते हैं, तो सत्य स्पष्ट होता है। पता चलता है कि मन से भिन्न हमारी अपनी सत्ता है, अपना सत्य है।''

इसे अनुभव करने पर पता चलता है कि मन के ज्ञान की सीमाएँ हैं, परन्तु यहाँ तो असीमित ज्ञान है। मन को उसमें प्रतिबिम्बित होने वाली वस्तुओं व दृश्यों का ज्ञान तो सहज हो जाता है। परन्तु एक ही समय में मन स्वयं को और उसमें प्रतिबिम्बित होने वाले सत्य को एक साथ नहीं जान पाता। जबकि इनकी साक्षी व द्रष्टा इन सभी का ज्ञान एक साथ पाने में समर्थ है। इसलिए बाहर का संसार जितना जड़ है, मन भी वैसा ही जड़ है। इन दोनों की अनुभूति पाने वाला पुरुष या चेतन सत्ता तो हम स्वयं ही हैं। अपने को अनुभव करने के बाद अर्थात् चेतना के परम स्रोत को जान लेने के बाद संसार व मन का सम्यक् ज्ञान सहजता से हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

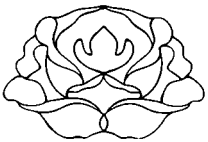

सम्भव है चित्त से चित्त का ज्ञान

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग से चित्त के रहस्य प्रकट होते हैं। चित्त में हमारे अस्तित्त्व की सम्पूर्ण कथा है। इसमें हमारे वर्तमान जीवन के साथ पूर्व के सभी जन्म व जीवन की सारी कड़ियाँ व कहानियाँ हैं। भविष्य में होने वाले जीवन व उसके घटनाक्रमों की रूपरेखा भी इसी में है। हमारे अपने जीवन में जो कुछ घटित हुआ, जो घटित हो रहा है और जो घटित होगा, इन सभी का बीजारोपण कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में चित्त में अवश्य उपस्थित होता है। हमारी स्मृतियाँ, संस्कार व कर्म के सभी रूप इसी चित्त में संचित व संग्रहीत होते हैं। इसे जानने, समझने से हम अपने अतीत को जान-समझ सकते हैं। हम अपने वर्तमान में हो रहे क्रियाकलापों व घटनाक्रमों के कारण को पहचान सकते हैं। इसी के साथ बहुत कुछ अंशों में भविष्य के यथार्थ की झलकियाँ पा सकते हैं। इसे हम यूँ भी कह सकते हैं कि चित्त में हमारे अपने जीवन संसार के अथ से इति की समूची कथा है। इसमें प्रवेश होने पर इसे पढ़ना व समझना सम्भव है।

लेकिन चित्त स्वयं अपने स्वरूप को और दृश्य पदार्थ के स्वरूप को एक साथ नहीं जान सकता। जब चित्त प्रतिबिम्बत पदार्थ को जानने का प्रयास करता है, उस समय वह अपने को नहीं जान पाता और जब स्वयं को जानने का प्रयास करता है, उस समय वह दृश्य पदार्थ को नहीं जान पाता। ऐसा केवल इसलिए है क्योंकि चित्त स्वयं प्रकाशित नहीं है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अब इससे आगे के सूत्र में महर्षि पतंजलि चित्त के सत्य को और अधिक स्पष्ट करते हैं-

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ ४/२१ ॥

शब्दार्थ=चित्तान्तरदृश्ये= एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मान लेने पर; **बुद्धिबुद्धेः अति प्रसङ्गः**= वह चित्त फिर दूसरे चित्त का दृश्य होगा- इस प्रकार अनवस्था प्राप्त होगी; **च**= और; **स्मृति संकरः**= स्मृति का भी मिश्रण हो जाएगा।

भावार्थ= एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मान लेने पर, अनवस्था प्राप्त होगी और स्मृति का भी मिश्रण हो जाएगा।

इस सूत्र में महर्षि ने चित्त के सम्बन्ध में होने वाली जिज्ञासा या प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया है। चित्त ज्ञान का साधन है। इससे वस्तु, पदार्थ अथवा दृश्य का साक्षात्कार होता है। ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाए कि एक चित्त से दूसरे चित्त को विषय सहित देखा जाना सम्भव है ? इस तरह से चित्त का विषय के साथ ज्ञान हो जाएगा, यह मानने में क्या हानि है ? इस शंका और जिज्ञासा का समाधान यहाँ पर महर्षि ने किया है।

चित्त को हम आधुनिक अर्थों में निजी संगणक (पर्सनल कम्प्यूटर) के रूप में मान सकते हैं। हमारे अपने कम्प्यूटर में अनेक तरह की सूचनाएँ, जानकारियाँ, आंकड़े अनेक-अनेक विधियों के अनुसार संग्रहीत होते हैं। इसमें इन्टरनेट जैसी कई सुविधाएँ भी हो सकती हैं। इस तरह के सम्पूर्ण सुविधापूर्ण व आधुनिकतम प्रणाली से युक्त कम्प्यूटर होने के बावजूद इसके उपयोग के लिए प्रयोगकर्त्ता की आवश्यकता होती है। आधुनिकतम प्रणाली के बावजूद यह जड़ ही रहता है, चेतन नहीं हो सकता। लगभग यही स्थिति चित्त की है। चित्त की कार्यप्रणाली आधुनिकतम कम्प्यूटर प्रणाली से कहीं अधिक सक्षम है। जैसे- कम्प्यूटर इन्टरनेट से जुड़ा होने पर आसानी से विश्वभर के ज्ञान से सम्पर्क कर सकता है, ठीक वैसे ही चित्त भी प्रकृति की व्यापक व रहस्यमय तथा जटिल व्यवस्था से जुड़ा है। इसके माध्यम से वह अनेकों रहस्यमय व अलौकिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कम्प्यूटर हो या चित्त अपनी समूची ज्ञान क्षमता के बावजूद इनकी प्रणालियों में एक व्यवस्था है। यदि इस व्यवस्था का उल्लंघन होने लगे तो एक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विचित्र अनवस्था या अव्यवस्था फैल जाएगी। यदि हम किसी विधि से किसी दूसरे के कम्प्यूटर को खोल लें, तो काफी कुछ हद तक उसके रहस्य जान सकते हैं। ऐसा कभी कभी होता भी है। जिसके तहत साइबर अपराध करने वालों के लिए एक सुनिश्चित दण्ड की व्यवस्था है। चित्त की अवस्था कम्प्यूटर से कहीं अधिक जटिल है। इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप होने से प्रकृति में भारी अव्यवस्था फैल जाएगी। तब इसे रोकने के लिए प्रकृति के अपने नियम व दण्ड विधान हैं।

अब कल्पना करें कि एक चित्त दूसरे चित्त को विषय सहित देखने लगे। ऐसी कल्पना के साथ हमें यह भी सोचना होगा कि हमें हमारे लिए ही सम्यक् रूप से सही विधि से अपने चित्त को समझना व जानना सम्भव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में दूसरे के चित्त को देखने, समझने व जानने के लिए अति विशिष्ट क्षमताओं का होना आवश्यक है। ऐसी क्षमता होने पर एक चित्त के माध्यम से दूसरे या तीसरे चित्त को देखा जा सकता है। ऐसा करने पर चित्त दूसरे चित्त का विषय सहित ज्ञान तो पा सकेगा। परन्तु इससे निजता व प्रकृति की व्यवस्था का उल्लंघन होगा और प्रकृति में अनवस्था व अव्यवस्था फैलेगी। ऐसा होने पर प्रकृति के नियम व विधान उसे नियन्त्रित करने के लिए सक्रिय होगा।

कई बार कुछ असुर वैज्ञानिक ऐसा करने में सक्षम भी हो जाते हैं। तब व्यक्ति व समूह के जीवन में ऐसी अव्यवस्था का दोष उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति में चित्त की संरचना, संस्कार व स्मृति को पहचान कर ऐसे असुर वैज्ञानिक जीवात्मा के जीवन को अपने हित के लिए प्रयोग करने लगते हैं। उसके शुभ व अशुभ संस्कारों व कर्मों को अपने ढंग से अपने लिए उपयोग करते हैं। दूसरों से अपने व अपनों के दूषित व कलुषित कर्मों का भोग करवाते रहते हैं। ऐसा सृष्टि में कई बार हो भी जाता है। ऐसा होने पर प्रकृति की सूक्ष्म व्यवस्थाएँ सक्रिय हो जाती हैं। तब ऐसे असुर वैज्ञानिक प्रकृति के कोप व उसके दण्ड विधान के पात्र होते हैं।

ऐसा होने पर भी प्रकृति द्वारा निर्मित चित्त के स्वरूप, संरचना व इसकी प्रणालियों का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान सम्भव नहीं हो पाता। जब भी ऐसा हुआ है, आंशिक रूप से ही हो सका है। इतने पर भी चित्त दृश्य ही रहता है, द्रष्टा नहीं हो पाता। जब एक चित्त दूसरे चित्त को देखता है तो द्रष्टा व ज्ञाता देखने वाले चित्त

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का स्वामी पुरुष ही होता है। वही प्रकृति की नैसर्गिक व्यवस्था भंग करने के कर्म का दोषी व भोक्ता भी बनता है। ऐसा होने पर स्मृतियों का संस्कारों का मिश्रण होने लगता है। तब कर्मफल की व्यवस्था में परेशानी उठ खड़ी होती है। प्रकृति की व्यापक व्यवस्था तब इसका निवारण-निराकरण करती है और स्वाभाविक व्यवस्था पुनः सुचारु हो जाती है। ऐसी अव्यवस्था होने पर भी द्रष्टा पुरुष ही चेतन होता है और चित्त जड़ प्रकृति के त्रिगुण का ही एक उपादान बना रहता है। प्रत्येक अवस्था में पुरुष नित्य-शुद्ध मुक्त होता है जबकि चित्त स्वप्रकाशरहित जड़ ही रहता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त नहीं चेतन पुरुष है हमारा स्वरूप

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की गहनता में हमारे जीवन का सत्य हमें अनुभव होने लगता है। अनुभव तो हमें इन प्रयोगों के बिना भी होते हैं। अभी भी हो रहे हैं, लेकिन इन अनुभवों में और अनुभव करने वाले में क्षण प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है। केवल परिस्थितियाँ ही नहीं बदलती, मन:स्थिति भी बदलती है। बस हम इस प्रवाह में बहते रहते हैं। इसी को जीवन मान लेते हैं। इस सत्य का सत्य न तो हमें समझ में आता है और न हम इसे समझने की कोशिश करते हैं। लेकिन जब हम अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की गहराई में उतरते हैं, तो हमें हमारे, हमारे जीवन के सत्य के दो आयाम पता चलते हैं। इनमें से पहला है-१. तादात्म्य होने का सच और दूसरा है- २. साक्षी होने का सत्य। तादात्म्य होने के सच को हम जी रहे हैं, जिए जा रहे हैं, इसलिए हमने इसी को जीवन का स्वरूप मान लिया है। हमें पता भी नहीं है कि इससे भिन्न भी कुछ है। लेकिन योग के प्रयोग के बाद हमें हमारे जीवन के सत्य का दूसरा आयाम भी स्पष्ट होता है, साक्षी होने का आयाम। इस आयाम में जीवन का सत्य बदल जाता है। तब हम परिधि में होने वाली अनवरत परिवर्तनशीलता के मध्य अपने अपरिवर्तनीय व शाश्वत होने का अनुभव कर पाते हैं।

चित्त न तो स्वप्रकाशित है और न द्रष्टा है। ऐसे में चित्त का द्रष्टा कौन है ? क्योंकि पुरुष को तो असंग और निर्विकार बताया गया है। इस जिज्ञासा के समाधान में सूत्रकार ऋषि अगला सूत्र कहते हैं-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्॥४/२२॥

शब्दार्थ= **चितेः अप्रतिसंक्रमायाः**= यद्यपि चेतन-शक्ति (पुरुष) क्रिया से रहित और असङ्ग है तो भी; **तदाकारापत्तौ**= तदाकार हो जाने पर; **स्वबुद्धिसंवेदनम्**= उसे अपनी बुद्धि का (चित्त का) ज्ञान होता है।

भावार्थ= यद्यपि चेतन पुरुष क्रिया से रहित और असङ्ग है, तो भी तदाकार हो जाने पर उसे अपने चित्त का ज्ञान हो जाता है।

हमारे अपने जीवन का केन्द्रीय तत्त्व प्रकाशपूर्ण है, चेतन है। हालाँकि वह निर्विकार, अपरिणामी, क्रियाशून्य व असंग है। फिर भी उसके सान्निध्य में अनेकों प्रकार की सक्रियताएँ प्रवाहित होती हैं। उसकी उपस्थिति में सब कुछ होता रहता है। इस सत्य को हम अपने दैनिक जीवन के सामान्य उदाहरण से समझ सकते हैं। घर में, हमारे कक्ष में दीया, लैम्प, बल्ब या ट्यूबलाइट जलती है। इसके प्रकाश में, इसकी उपस्थिति में घर के सभी लोग अलग-अलग काम करते रहते हैं। कोई इस प्रकाश में पढ़ता-लिखता है। कोई इस प्रकाश में भोजन पकाता है। कोई इस प्रकाश के सान्निध्य में सिलाई-कढ़ाई जैसे अन्य कार्य करता है और कभी-कभी तो कोई कुछ भी नहीं करता, बस बैठा रहता है।

इन सभी सदस्यों की क्रियाशीलता अलग-अलग प्रकार की है। इनमें से प्रत्येक की रुचियाँ अलग हैं, प्रवृत्तियाँ व गतिविधियाँ भी अलग हैं। हालाँकि इनमें से सभी प्रकाश के सान्निध्य में अपनी गतिविधियाँ संचालित कर पा रहे हैं। प्रकाश के न होने पर, प्रकाश की अनुपस्थिति व अभाव में अंधेरा हो जाएगा। तब इनमें से किसी के लिए भी सम्भव न रह जाएगा कि वह अपनी गतिविधियों को सक्रिय रखें। प्रकाश की इसी उपस्थिति की ही भाँति हमारे जीवन में हमारी आत्मा या पुरुष की उपस्थिति है। जिस तरह से प्रकाश उपस्थित होते हुए भी किसी की गतिविधि में न तो सक्रिय होता है और न सहभागी। वह बस होता है और उसका होना अनिवार्य है। बस ठीक इसी तरह पुरुष की उपस्थिति या आत्मा की उपस्थिति अनिवार्य है जीवन के लिए। इसकी उपस्थिति में शरीर सक्रिय रहता है, प्राण सक्रिय रहते हैं, मन सक्रिय होता है, गहराई में चित्त भी सक्रिय रहता है। जबकि पुरुष इनमें से किसी की सक्रियता में कोई भागीदारी नहीं निभाता। फिर भी उसके होने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पर ही जीवन होता है और न होने पर जीवन तत्काल मरण में परिवर्तित हो जाता है।

हाँ, एक अन्तर है पुरुष या आत्मा के प्रकाश और दीपक या ट्यूब लाइट के प्रकाश में। पुरुष या आत्मा प्रकाशपूर्ण होने के साथ चेतना पूर्ण है और ज्ञानपूर्ण भी है। इससे जीवन के सभी आयामों में-शरीर, प्राण व मन या चित्त में प्रकाश के साथ चेतना व ज्ञान का भी स्वत: संचार होता रहता है। जबकि सामान्य जड़ प्रकाश के साथ ऐसा नहीं हो पाता। साधारण प्रकाश में केवल गतिविधियाँ सक्रिय होती हैं। इनकी सक्रियता उन सभी के अपने बल, विवेक, विचार या फिर यान्त्रिक शक्ति के कारण होती हैं, जबकि पुरुष या आत्मा की उपस्थिति जीवन के प्रत्येक आयाम को उसकी अपनी स्थिति या बनावट के अनुसार-बल, विवेक, विचार अथवा शक्ति प्रदान करती रहती है और ऐसा होता है उसकी उपस्थिति के कारण। वह इसके लिए कोई इच्छा या चेष्टा नहीं करती। इसीलिए उसमें असंगता, निर्विकारिता या क्रियाशून्यता बनी रहती है जैसे कि जड़ प्रकाश स्रोत प्रकाश बिखेरते हुए भी कुछ नहीं करते। बस इसके लिए उनका होना ही पर्याप्त होता है।

इसके बावजूद चेतन पुरुष जब चाहे चित्त से तादात्म्य बिठा सकता है। तादात्म्य की इस अवस्था में वह जीवन की प्रत्येक परत से, प्रत्येक तल से संयुक्त हो जाता है। तब वह कर्त्ता हो जाता है, भोक्ता हो जाता है, ज्ञाता हो जाता है। ऐसे में, इस तादात्म्यता में वह अविद्या से घिर जाता है। तब उसमें अस्मिता के रूप में उसका मैं भी प्रकट हो जाता है। राग-द्वेष उसे व्यापने लगते हैं। अभिनिवेश उसे अपने पाश में जकड़ने लगता है। ऐसे में जीवन के हर तल पर होने वाली गतिविधियों को वह अपना कर्म समझने लगता है। यह तादात्म्यता उसके अनुभवों में परिवर्तन ले आती है।

इस स्थिति के सम्मोहन को पुरुष सदा-सर्वदा तोड़ने में समर्थ रहता है। अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग इसमें सहयोगी बनते हैं। इनकी गहनता में पहुँचने पर वह फिर से साक्षी हो जाता है। तब वह द्रष्टा होता है चित्त एक दृश्य बना रहता है। तब वह जीवन के प्रत्येक तल पर होने वाली गतिविधि का, न तो कर्त्ता होता है और न भोक्ता। तदाकार होने के सूत्र को तोड़कर अपनी तादात्म्यता को विसर्जित कर वह फिर से असंग, निर्विकार व स्वयं में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थित हो जाता है। ऐसी अवस्था में अविद्याजन्य कोई भ्रम उसमें नहीं व्याप्त होते हैं। वह राग-द्वेष रहित होता है। इनमें होने वाले सुख व दुःख से भी वह रहित हो जाता है। साक्षी भाव में स्थित होते ही, तादात्म्यता की स्थिति की सभी परेशानियाँ समाप्त हो जाती हैं। भ्रान्तियों का अंधेरा समाप्त हो जाता है और वह अपने में स्थित हो प्रकाशपूर्ण हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

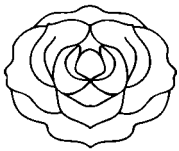

जीवन के सब अर्थ समाये हैं चित्त में

जीवन के जिस किसी रूप को हम अनुभव कर रहे हैं, जिस किसी घटनाक्रम के हम साक्षी बन रहे हैं, सभी के बीज चित्त में निहित हैं। हमारे जीवन का ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसका कारण चित्त में उपस्थित न हो। यदि हम अपने जीवनक्रम में परिवर्तन करना चाहते हैं, तो फिर हमें वह परिवर्तन पहले अपने चित्त में करना पड़ेगा। चित्त में अनेक परते हैं कर्म की परतें, वासनाओं की परतें, स्मृतियों की परतें, सबकी सब यहीं उपस्थित हैं। हमारे जीवन के अनेक-अनेक रूप इसमें निहित हैं। इन रूपों में हम स्वयं की अपनी वास्तविकता को पहचानने में असफल रहते हैं। लेकिन जब तप से, विचारशीलता से, ईश्वर की अविराम भक्ति से ये सभी परते हटती हैं, छटती हैं, मिटती हैं तो चित्त की उस शुद्धता में हमारी स्वयं की वास्तविकता प्रतिबिम्बित होती है। द्रष्टा पुरुष की छवि चित्त में झलक उठती है।

यद्यपि चेतन पुरुष क्रिया से रहित और असङ्ग है तो भी तदाकार हो जाने पर उसे अपने चित्त का ज्ञान होता है। चेतन पुरुष ही हमारा वास्तविक स्वरूप है। हमारे जीवन में इसका प्रभाव तो सतत रहता है, पर हम इसकी पहचान नहीं कर पाते। क्योंकि जीवन के घटनाक्रमों के रूप में, परिस्थितियों के परिदृश्य के रूप में चित्त की परतें ही प्रकट होती रहती हैं। मन की विचारशीलता में, मानसिक हलचलें, मन:स्थिति की प्रत्येक गतिविधि में इसी के दर्शन होते रहते हैं। सच

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की शाश्वतता व नित्यता प्रकट नहीं होती। इसका प्रकटीकरण तो चित्त की परिष्कृति में, इसकी शुद्धि में ही हो पाता है।

इसे महर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में कहते हैं-

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥ ४/२३॥

शब्दार्थ= **द्रष्टृदृश्योपरक्तं**= द्रष्टा और दृश्य- इन दोनों से रंगा हुआ; **चित्तम्**= चित्त; **सर्वार्थम्**= सब अर्थ वाला हो जाता है।

भावार्थ= द्रष्टा और दृश्य- इन दोनों से रंगा हुआ चित्त सब अर्थ वाला हो जाता है।

यह सूत्र अद्‌भुत है। महान सूत्रकार ऋषि ने इसमें एक साथ सब कुछ कह डाला है। यहाँ पर वे चित्त की दो विशेषताएँ बताते हैं- १. द्रष्टा के रंग में रंगा हुआ और २. दृश्य के रंग में रंगा हुआ। जब हम चित्त में इन दोनों के रंग की अनुभूति पा लेते हैं तो इन दोनों विशेषताओं से जुड़ी तीसरी विशेषता का, ३. सब अर्थ वाला भी अनुभव कर लेते हैं। यह अनुभव बड़ा विरल है। सामान्य जीवन क्रम में प्राय: इसकी एक विशेषता की अनुभूति पाते हैं और वह अनुभूति है चित्त के दृश्य के रंग में रंगने की। इस अनुभूति के कारण हमें संसार प्रत्यक्ष होता रहता है। अध्यात्म की समझ नहीं हो पाती। लेकिन कभी किन्हीं विरल क्षणों में जब हम चित्त को द्रष्टा के रंग में रंगा हुआ अनुभव करते हैं, तो अध्यात्म भी प्रत्यक्ष होने लगता है।

जिसने इन दोनों अनुभूतियों को पाया, आत्मसात किया वही चित्त को सब अर्थ वाला कह सकता है। यह अति कठिन है लेकिन सम्भव है। इसे असम्भव नहीं कहा जा सकता। जन्म-जन्मान्तरों से, अनेक जन्मों से हमने संसार के विविध रंग अनुभव किए हैं। बस अपना खुद का रंग अनुभव नहीं कर पाए। जबकि इस रंग में हमारा स्वयं का रंग भी घुला है। सच कहें तो हमारे अपने रंग के बिना संसार के किसी भी रंग का कोई अस्तित्त्व नहीं है। फिर भी सब कुछ देखते हुए हम देखने वाले को नहीं देख पाते। इस सत्य को किसी कवि ने कुछ इस तरह से कहा है- 'जिन आंखिन सब देखिहहिं, सो आंखि न देखी जाहि'- अर्थात् जिन आँखों से हम सब देखते हैं, देख पाते हैं, वहीं आंख हम नहीं देख पाते। लेकिन आध्यात्मिक जीवन में एक क्षण ऐसा आता है जब यह सम्भव हो पाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पश्चिम के महान दार्शनिक ब्रैडले ने इसी सच्चाई को समझाने के लिए एक कथा कही है। यह कथा कुछ इस प्रकार है। एक नास्तिक था, लेकिन वह विद्वान था। उसने दुनिया भर के धर्म व दर्शन के तकरीबन सभी ग्रन्थ पढ़े थे। लॉजिक में, न्याय दर्शन में उसे प्रवीणता थी। उसके तर्क के सामने बड़े-बड़ों के पसीने छूट जाते थे। तर्क करते हुए वह बड़ी आसानी से ईश्वर के अस्तित्त्व को नकार देता था। उसने अपने इस निष्कर्ष की घोषणा करने के लिए बड़े-बड़े अक्षरों में दीवार पर लिख रखा था- 'गॉड इज़ नो व्हेअर' अर्थात् ईश्वर कहीं नहीं है। उसके घर में जो भी आता, उससे पहले तो वह तर्क करता, उसे बहस के लिए प्रेरित करता। बाद में उसे पराजित करता और उसे अपने निष्कर्ष के बारे में बताता। उसे दीवार में लिखे हुए वाक्य को दिखाता। ऐसा करके उसे बड़ी प्रसन्नता और तृप्ति का अनुभव होता था। उसे अपार सन्तुष्टि मिलती थी।

ऐसा करते हुए उसे कुछ समय बीत गया। उसका विवाह हुआ और थोड़े दिनों के बाद वह पिता बना। उसके घर एक खूबसूरत, मासूम और भोला-भाला लड़का पैदा हुआ। इस बच्चे ने भी पढ़ना-लिखना शुरु किया। इस छोटे बच्चे के लिए दीवार पर लिखे हुए 'गॉड इज़ नो व्हेअर' को पढ़ना कठिन था। वह छोटा था इतने बड़े वाक्य को वह नहीं पढ़ पाता था। वह बच्चा 'गॉड इज़'- तो आसानी से पढ़ लेता था, लेकिन 'नो व्हेअर' पढ़ने में अटक जाता था। उसके लिए यह बड़ा शब्द था। इसका एक साथ उच्चारण करना उसके लिए कठिन था। इसलिए उस बच्चे ने उस शब्द को दो भागो में तोड़ दिया- 'नाउ-हिअर'। अब वह बच्चा पढ़ता था- 'गॉड इज़ नाउ हिअर'।

वह बच्चा जब-तब इसे दुहरा देता 'गॉड इज़ नाउ हिअर'। उसके नास्तिक विद्वान पिता ने भी इसे सुना। एक बार-दो बार कई बार उसने सुना। उसका निष्कर्ष 'गॉड इज़ नो व्हेअर'- ईश्वर कहीं नहीं है, बच्चे के मुख से उच्चारित होकर 'गॉड इज़ नाउ हिअर'- ईश्वर अब यहीं हैं- हो गया। बच्चे के पास न तो कोई तर्क था, न विद्वता और न कोई बहस। जिन शब्दों को वह बोल रहा था, उसके उच्चारण में भी उसके बालपन की तुतलाहट थी। उसने सुना, सोचा। उसके विचारों में विवेक जागा। मन ठहर गया, तर्क अब न रहे, विवाद भी बाकी न रहे, बस एक अनुभूति बची- 'गॉड इज़ नाउ हिअर'- ईश्वर अभी यहीं है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बस इस कथा में ही इस सूत्र का सत्य है। चित्त में सभी अर्थ समाए हैं। इसमें संसार के सभी अर्थ हैं। बड़ा घनत्व है इनमें। संसार के इन अर्थों में इतनी सघनता है कि अध्यात्म के सभी अर्थ खो जाते हैं। हम स्वयं ही स्वयं को नहीं ढूँढ़ पाते। लेकिन जब संसार की सघनता की परतें हटती हैं, चित्त शुद्ध होता है। स्वयं की चेतना, पुरुष का चेतन स्वरूप चित्त में स्पष्ट हो उठता है। अभी और यहीं सब कुछ साफ-साफ हो जाता है। न तो तर्क आवश्यक रह जाते हैं और न विचार। न ग्रन्थों की आवश्यकता होती है और न किसी प्रमाण की, बस अनुभूति बचती है। इस अद्‌भुत अनुभूति में स्वयं की वास्तविकता का अनुभव होने के साथ संसार की वास्तविकता का भी अनुभव होने लगता है। जीवन के सभी अर्थ यहाँ स्वयं ही प्रकट और प्रस्फुटित हो जाते हैं। ऐसी भाव दशा में द्रष्टा और दृश्य के रंगों में रंगा हुआ चित्त बस अर्थों वाला हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

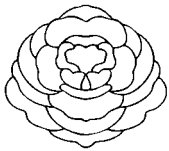

असंख्य वासनाओं का घर है चित्त

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि चित्त में जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी रंग में रंगता रहता है। इस स्पष्टता को समझकर विचार किया जा सकता है कि अपने चित्त को हम अब तक किन रंगों से रंगते आए हैं। व्यक्ति, वस्तु, विचार, दृश्य और वे सभी घटनाक्रम जो अब तक हमारे चित्त में प्रतिबिम्बित होते आए हैं, इन सबने चित्त को अपने रंग में रंगा है। इनसे जुड़ी भावनाएँ, राग-द्वेष सबने चित्त में अपना अंकन किया है। एक बार नहीं अनेक बार हमारा अपना चित्त इन सब रंगों से रंगा गया है और अब वर्तमान क्षण के आते तक ये सभी रंग इतने गाढ़े और गहरे हो गए हैं कि स्वयं का, चित्त का अपना रंग खो गया है। पता ही नहीं चल पाता कि इसकी अपनी वास्तविकता क्या है ? इसका सत्य, इसका यथार्थ क्या है ? अनेक, अनेक सत्य का ज्ञान कराने वाले चित्त का स्वयं का सत्य पता चलना मुश्किल हो गया है। अब तो स्थिति यह है कि जिस चित्त में सब कुछ प्रतिबिम्बित होता रहता है, उसमें स्वयं हम प्रतिबिम्बित नहीं हो पाते।

द्रष्टा और दृश्य के रंग में रंग कर चित्त सब अर्थों वाला हो जाता है। द्रष्टा का रंग चित्त को चेतना सम्पन्न करता है। इसमें ज्ञानशक्ति, अनुभवशक्ति व बोधशक्ति प्रकट होती है। जबकि दृश्य के रंग में रंगकर वह अपने सम्मुख उपस्थित होने वाले सभी दृश्यों का ज्ञान अनुभव व बोध

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पाता है। यद्यपि ऐसा होते हुए यह अहसास प्रायः नहीं हो पाता, जिसे ज्ञान हो रहा है, अनुभव हो रहा है, वह ज्ञाता, अनुभवकर्त्ता व बोध पाने वाला वास्तव में द्रष्टा है। चित्त तो बस अपने सम्मुख आने वाले प्रत्येक दृश्य को उसमें सामने रख रहा है। ऐसे में वह बस ज्ञान का माध्यम है, स्वयं ज्ञाता नहीं है।

सूत्रकार महर्षि पतंजलि इस सत्य को अपने अगले सूत्र में और अधिक स्पष्ट करते हैं-

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्॥ ४/२४॥

शब्दार्थ= **तत्**= वह (चित्त); **असंख्येयवासनाभिः**= असंख्य वासनाओं से; **चित्रम् अपि**= चित्रित होने पर भी; **परार्थम्**= दूसरे के लिए है; **संहत्यकारित्वात्**= क्योंकि यह संहत्यकारी (मिल-जुलकर कार्य करने वाला) है।

भावार्थ= वह (चित्त) असंख्य वासनाओं से चित्रित होने पर भी, दूसरे के लिए है क्योंकि वह संहत्यकारी अर्थात् मिल-जुलकर कार्य करने वाला है।

महर्षि ने इस सूत्र में चित्त के सत्य का प्रकटीकरण किया है। इसमें कहे गए सभी सत्यों पर, सभी तत्त्वों पर गहनता से, गहराई से विचार करना आवश्यक है। इसमें मूलतः चार बातें कही गयी हैं। १. असंख्य वासनाओं से, २. चित्रित होने पर भी, ३. दूसरे के लिए है एवं ४. यह मिल-जुलकर कार्य करने वाला है। अब इन चारों बिन्दुओं पर विचार करना है, इनमें से प्रत्येक पर चिन्तन करना है और तब सूत्र के सत्य को आत्मसात करना है।

वासनाएँ असंख्य हैं। इनकी गिनती नहीं हो सकती। इनकी गणना नहीं की जा सकती। सामान्य परम्परा में हम वासना को काम से जोड़ लेते हैं और कामवासना शब्द का संयुक्त प्रयोग करते हैं। कामवासना को पारम्परिक प्रचलन व चिन्तन में दोषपूर्ण माना जाता है। यद्यपि इस दोष से कोई भी चित्त के शुद्ध होने तक मुक्त नहीं है। हालाँकि योग साधक के लिए वासना ही दोषपूर्ण है। क्योंकि प्रत्येक वासना चित्त को अशुद्ध करती है। वासना का अर्थ है चाहत। अज्ञान से अविद्या से इसका जन्म होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यह मुझे मिले, यह मेरा हो जाए। तुझे कुछ न मिले, मिले भी तो मेरे से कम मिले। तेरा मेरे से बढ़कर न हो। भक्ति रस के मर्मज्ञ तुलसी बाबा रामचरितमानस में कहते हैं- मैं अरु मोर, तोर तै माया। जे बस कीन्हें जीव निकाया। मैं और मेरा, तू और तेरा, यही माया है। जिसने सम्पूर्ण जीव समुदाय को वश में कर रखा है।

अलग-अलग जीवों की अलग-अलग वासनाएँ। क्षुद्र कीटों से लेकर देवों तक वासनाएँ ही वासनाएँ फैली हुई हैं। इनका कोई एक रंग नहीं है। जीवन के प्रत्येक तल पर इनके भिन्न-भिन्न रंग हैं। त्रिगुण प्रकृति में जीवन के असंख्य तल हैं, सृष्टि का विस्तार अनन्त है। इन सभी जीवन के भी अनन्त रंग रूप हैं और सब तरफ वासनाएँ हैं, चाहते हैं, लालसाएँ हैं। इन सब के रंग चित्त में उपजते हैं। वासना के अनुरूप चित्त किसी दृश्य की ओर उन्मुख होता है। इस स्थिति से अलग दृश्य के अनुरूप चित्त में वासना की तरंग उठती है। ये लहरें, तरंगें उठती ही रहती हैं। जाग्रत में स्वप्न में जीवन में और मरण के पश्चात् यह क्रम कभी नहीं रुकता। तभी तो कहा गया है कि वासनाएँ असंख्य अगणित हैं।

इन सबसे चित्रित होता है चित्त। बहुत पुराने समय में शरीर पर चित्रकारी कराने का चलन था। इसकी चर्चा संस्कृत काव्यों एवं नाटकों में पर्याप्त की गयी है। आधुनिक युग में यह चलन फिर से लौट आया है। लोग अपने शरीर पर टैटू छपवाते हैं। कई बार तो इनकी बहुतायत हो जाती है। बस इसी टैटू की तरह, इसी चित्रकारी की तरह प्रत्येक वासना चित्त में चित्रित होती रहती है। हमारे न चाहने पर भी ऐसा होता रहता है। वासना का प्रत्येक रंग, इसकी प्रत्येक तरंग इसकी हर लहर चित्त को अपने रंग में रंगती है। यह चित्रकारी वासना के आरम्भ से चल रही है, चलती जा रही है और चलती जाएगी। यह तब तक होगा जब तक हम वासना से, अविद्या से मुक्त नहीं होंगे।

वासनाएँ चाहे कितनी ही क्यों न हों। ये असंख्य हों या अगणित, फिर इनकी चित्रकारी चाहे कितने समय से हो रही हो और आगे चाहे कितने समय तक होती रहे, पर चित्त स्वयं इनका उपभोग नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए क्योंकि चित्त जड़ है, पदार्थ है। यह दृश्य है, द्रष्टा नहीं। दृश्य कैसा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भी हो, इसका उपयोग दर्शन के लिए है। दृश्य अपने मनोहर या मनोरम होने का स्वयं आनन्द नहीं उठा सकता। इसी तरह दृश्य भले ही कितना कुरूप हो, भयोत्पादक हो, वह स्वयं उससे भयभीत नहीं हो सकता। बस यही स्थिति चित्त की है वह पदार्थ होने के कारण स्वयं अपनी अनुभूति नहीं पा सकता। पदार्थ की अनुभूति चेतना पा सकती है, स्वयं पदार्थ नहीं।

चित्त के एक अन्य गुण की भी चर्चा यहाँ है। चित्त मिल-जुलकर कार्य करता है। अकेले चित्त कार्य करने के लिए सक्षम नहीं है। इसके लिए शरीर की और इन्द्रियों की आवश्यकता है। इन्द्रियों के झरोखे से चित्त में प्रतिबिम्ब बनते हैं। इसमें चित्रण होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ इसमें प्रतिबिम्ब बनाती हैं, इसमें चित्रण होने में सहायक होती हैं। फिर इसमें जो वासना की लहरें उठती हैं, उसे कर्मेन्द्रियाँ पूरी करती हैं, तब फिर वासना साकार रूप लेती है। इस तरह चित्त मिल-जुलकर कार्य करता है।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है जैसे कि वासना उठी कि स्वादिष्ट भोजन चाहिए। आटा-दाल-चावल, दही, तरकारी, मिर्च, मसाले के समुचित सम्मिश्रण से अग्नि व बर्तनों के सहयोग से भोजन बन गया। अब यह भोजन कितना भी स्वादिष्ट क्यों न हो, अपना स्वाद स्वयं नहीं पा सकता। इसी तरह चित्त इन्द्रियों व शरीर से, प्राण से मिल-जुलकर, वासनाओं को चित्रित करता है, इन्हें साक्षात् करता है, पर इनकी अनुभूति स्वयं नहीं कर पाता। इनकी अनुभूति का भोग तो चित्त का स्वामी पुरुष ही करता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आत्मभावना द्वार है अध्यात्म का

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त की वासनाओं को क्षीण करते हैं। इसी के साथ आत्मभावना को प्रबल करते हैं। वासना और आत्मभावना दो विपरीत बातें हैं, ठीक रात और दिन की तरह। रात की उपस्थिति में दिन के होने की कोई सम्भावना नहीं है। इसी तरह दिन की उपस्थिति में रात के होने की कोई सम्भावना नहीं है। इन दोनों का स्वभाव विपरीत है। इनकी प्रकृति परस्पर विरोधी है। कुछ ऐसा ही सम्बन्ध वासना व आत्मभावना के बीच है। वासना से चित्रित चित्त में आत्मभावना नहीं हो पाती। लेकिन जब आत्मभावना का अंकुरण होता है तो वासना स्वत: ही तिरोहित होने लगती है। हालांकि दोनों ही चित्त भूमि में होती हैं। संसार के सम्मोहन से अविद्या का- वासना का विस्तार होता जाता है। लेकिन जैसे ही यह सम्मोहन टूटता है, वासना स्वत: ही विसर्जित होने लगती है। तब आत्मभावना पनपने लगती है। उन क्षणों में जीवन की प्रकृति, जीवन की दृष्टि स्वत: ही बदलने लगती है। जीवन का एक भिन्न स्वरूप प्रकट होता है।

एक वासना पूरी हो या अधूरी रहे, दूसरी अपने आप आ जाती है। चित्त में इसका चित्रण हो जाता है। फिर भी इनमें से किसी भी वासना का भोग चित्त स्वयं नहीं करता। इनमें से प्रत्येक का भोग द्रष्टा पुरुष करता है। वही चित्त का स्वामी है। वैसे भी पुरुष चेतन है, जबकि चित्त तो जड़ है। जड़ पदार्थ का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उपभोग स्वयं जड़ नहीं कर सकता। इसके उपभोग के लिए चेतनता आवश्यक है। इसके अलावा चित्त इन्द्रियों के साथ मिलजुलकर अपना कार्य सम्पन्न करता है।

अब इसके पश्चात् सूत्रकार महर्षि अगले क्रम को अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ ४/२५ ॥

शब्दार्थ= विशेषदर्शिनः= (समाधिजनित विवेक ज्ञान के द्वारा) चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष कर लेने वाले (योगी) की; **आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः**= आत्मभावविषयक भावना सर्वथा निवृत्त हो जाती है।

भावार्थ= विवेकज्ञान द्वारा चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष करने वाले योगी की आत्मभाव विषयक भावना सर्वथा निवृत्त हो जाती है।

अविद्या कारण है वासनाओं का। इसे अन्य शब्दों में कहें तो अज्ञान से वासनाएँ उपजती हैं और समूचे चित्त में चित्रित हो जाती हैं। इस अज्ञान से निवृत्ति हो तो वासनाओं से निवृत्ति हो। आत्मभावना- आत्मजिज्ञासा से यह होना सम्भव है। इस सच को समझने के लिए हमें ज्ञान के प्रचलित अर्थों से दूर होना होगा। सामान्य क्रम में हम समझ लेते हैं कि अज्ञान वहाँ हैं, जहाँ पढ़ाई-लिखाई नहीं है। जहाँ जानकारियाँ नहीं है। जानकारियाँ मिलें, पढ़ाई-लिखाई की सुविधा हो तो अज्ञान छूट जाएगा। पर यहाँ बात ऐसी नहीं है। यहाँ पर स्थिति कुछ ऐसी है जैसे कि कोई व्यक्ति सोया हुआ अपनी सपनों की दुनियाँ में खोया हुआ है। सपनों में अलग-अलग ढंग से सुख भोग रहा है। इन सपनों के सुखों से निवृत्ति तभी सम्भव है, जब वह जागे, उसे होश आए। जागरण से ही उसकी वासनाएँ मिटेंगी। ज्ञान यही जागरण है। अज्ञान सपनों में शयन है।

सपने देखते-देखते जब वासनाओं से मन अकुलाता है। जब मन में मैं कहाँ हूँ ? मैं कौन हूँ ? के सवाल जन्म लेते हैं। जब अपनी वास्तविक पहचान के लिए त्वरा व तीव्रता उठती है। यही आत्मभावना है। इस आत्मभावना से ही विवेक-वैराग्य जन्म लेते हैं। वासना से तादात्म्य टूटता है, आत्मभावना से जुड़ता है। इस आत्मभावना से जीवन की दिशा व दशा स्वतः परिवर्तित होने लगती है। सर्वथा भिन्न जीवन दृष्टि विकसित होने लगती है। इसका सम्बन्ध पढ़ने-लिखने से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नहीं है। इसका सम्बन्ध भ्रान्ति मुक्त होने से है। सपनों की नींद से जागरण होने पर ऐसी स्थिति आती है। जागरण होने पर न केवल सपनों की वासनाएँ विसर्जित होती है, बल्कि उन सपनों में उपजी आत्मभावना भी चली जाती है।

इस सच को स्पष्ट करने वाली एक प्रीतिकर कथा है। इस कथा का सम्बन्ध नरोपा से है। नरोपा महान गुरु तिलोपा के शिष्य थे। उनकी यह कथा अपने महान गुरु से मिलने से पूर्व की है। चौरासी सिद्धों के वर्णन में इस कथा को पढ़ा जा सकता है। नरोपा महान विद्वान थे, बहुत बड़े पण्डित थे। उनके बारे में कहा जाता है कि एक महान विश्वविद्यालय के वह कुलपति थे। उनके विश्वविद्यालय में तीस हजार से भी अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे। एक दिन वह अपने विद्यार्थियों के बीच बैठे थे। उनके चारों ओर ग्रन्थ बिखरे हुए थे। उस समय वह कुछ थके हुए थे, सो झपकी लग गयी।

इस झपकी में उन्होंने एक दृश्य देखा। इसे स्वप्न कहना सही नहीं होगा। यह एक दिव्य-दर्शन सा था। उन्होंने इस दृश्य में बूढ़ी कुरुप भयंकर स्त्री को देखा। एकदम चुड़ैल लग रही थी वह। उसकी कुरुपता इतनी भयंकर थी कि वह कांपने लगा। अपने स्वप्न में उन्होंने उससे भागने की बहुतेरी कोशिश की, लेकिन भाग नहीं सके। उन्हें कुछ ऐसा लगा जैसे कि उस कुरूप स्त्री ने उन्हें सम्मोहित कर दिया हो। उस स्त्री का शरीर अवश्य डरावना था लेकिन उसकी आँखें अति चुम्बकीय थीं।

उस स्त्री ने उनसे पूछा- ''नरोपा! तुम क्या कर रहे हो?'' और उन्होंने कहा- ''मैं अध्ययन कर रहा हूँ।'' ''क्या अध्ययन कर रहे हो तुम?''- उस कुरूप बूढ़ी स्त्री ने पूछा। उन्होंने कहा- ''दर्शन, धर्म, तत्त्व मीमांसा, भाषा, व्याकरण, तर्कशास्त्र।'' उस बूढ़ी स्त्री ने फिर पूछा- ''क्या तुम समझते हो इन्हें?'' नरोपा ने कहा- ''हाँ, मैं समझता हूँ इन्हें।'' उस स्त्री ने फिर पूछा- ''तुम शब्दों को समझते हो या कि अनुभव को?''

यह बात नरोपा से पहली बार पूछी गयी थी। नरोपा से जीवन में हजारों प्रश्न पूछे गए थे। वह महान आचार्य थे, विश्वविद्यालय के प्राख्यात् कुलपति थे। हजारों विद्यार्थियों ने उनसे अनेक तरह के सवाल पूछे थे। लेकिन ऐसा सवाल उनसे किसी ने नहीं पूछा था कि तुम शब्दों को समझते हो या अनुभव को? इस सवाल को पूछने वाली स्त्री इतनी विचित्र और इतनी चुम्बकीय थी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कि उसके सामने झूठ बोलना असम्भव था। उन्हें सत्य कहना ही पड़ा। उन्होंने कहा- ''हाँ, मैं शब्दों को समझता हूँ।''

उनके इस उत्तर ने उस स्त्री को प्रसन्न कर दिया। वह नाचने लगी और हँसने लगी। उसकी इस प्रसन्नता में उसकी कुरूपता भी विलीन हो गयी। उसका असीम सौन्दर्य प्रकट हो गया। उसे इतना प्रसन्न देखकर नरोपा ने सोचा- ''जब यह इतना प्रसन्न है तो क्यों न इसे थोड़ा और प्रसन्न कर दूँ।'' ऐसा सोचकर उन्होंने धीरे से कहा- ''हाँ, मैं भाव भी समझता हूँ।'' यह सुनकर वह स्त्री पहले से हजारों गुना ज्यादा कुरूप और बूढ़ी हो गयी और उसने उन्हें धिक्कारते हुए कहा- ''झूठे, फरेबी, मक्कार कहीं के, तुम किससे झूठ बोल रहे हो।'' इसी के साथ नरोपा की आँखें खुल गयीं। उनका स्वप्न, शयन, जागरण में परिवर्तित हो गया। उस दिन से उन्होंने किसी ग्रन्थ का स्पर्श नहीं किया। वह लगातार आत्मभावना में रहने लगे। इसी क्रम में उनकी भेट महान गुरु तिलोपा से हुई और तब उन्होंने चित्त और आत्मा के भेद को अपनी समाधि में प्रत्यक्ष किया। इस अवस्था में वह आत्मभावना से भी निवृत्त हो गए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

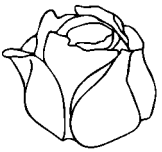

विवेकज्ञान के उदय से प्राप्त होता है कैवल्य

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त में विवेक ज्ञान का उदय करते हैं। विवेक ज्ञान का उदय होने से चित्त की दिशा व दशा परिवर्तित होती है। इसके पहले जहाँ चित्त विषयों की ओर अभिमुख रहता था, वहीं अब उसमें आत्मभावना पनपने लगती है। इसके साथ ही वासना, संस्कार व कर्मभार से बोझिल चित्त निर्भार होने लगता है। इस प्रक्रिया में अंधियारा अपने आप ही हटता, छंटता व क्षीण होता जाता है। साथ ही प्रवृत्तियाँ व परिस्थितियाँ भी बदलती जाती हैं। न भ्रान्ति रहती है और न भ्रम पनपते हैं। सदा ही संशय रहित, सस्पष्ट ज्ञान प्रस्फुटित होता रहता है। जिज्ञासा समाधि में अपना समाधान पा जाती है। विवेक ज्ञान बढ़ने के साथ प्रकाश स्वत: ही बढ़ता जाता है। इस प्रकाश में स्वयं ही विभूतियाँ, विलक्षण शक्तियाँ व अलौकिक सिद्धियाँ प्रकट होती रहती हैं और यह सब होता है बिना किसी प्रयास के, स्वभावत: अनायास। क्योंकि विवेक ज्ञान के विकसित होने से चित्त की प्रकृति ही ऐसी हो जाती है कि उसमें कोई विकृति पनप ही नहीं सकती।

समाधिजनित विवेक ज्ञान द्वारा चित्त और आत्मा के भेद को प्रत्यक्ष कर लेने वाले योगी की आत्मभाव विषयक भावना भी पूरी तरह से छूट जाती है। आध्यात्मिक पथ का प्रारम्भ आत्मभावना से आत्मजिज्ञासा से होता है। इसके प्रगाढ़ होने से वासना क्षीण होती है और तब धीरे-धीरे तादात्म्य विसर्जित होने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लगता है। पहले घटनाक्रमों से तादात्म्य मिटता है। बाद में सम्बन्धों से सम्मोहन टूटता है। इसके पश्चात लगता है कि जिस तरह परिस्थिति व परिवेश स्वयं से भिन्न हैं, ठीक उसी तरह अपना शरीर भी अपने से भिन्न है। शरीर ही क्यों प्राण व विचार भी भिन्न अनुभव होते हैं। संस्कार व कर्म की भिन्नता के साथ चित्त व आत्मा का भेद प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस सूत्र कथन के सत्य को सूत्रकार महर्षि अगले सूत्र में और भी अधिक स्पष्ट करते हैं-

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्॥ ४/२६॥

शब्दार्थ= **तदा**= उस समय (योगी का); **चित्तम्**= चित्त; **विवेकनिम्नम्**= विवेक में झुका हुआ; **कैवल्यप्राग्भारम्**= कैवल्य के अभिमुख हो जाता है।

भावार्थ= उस समय विवेक में झुका हुआ योगी का चित्त कैवल्य के अभिमुख हो जाता है।

चित्त की दो ही सम्भव अवस्थाएँ हैं। इनमें से पहली है- वासना की ओर झुका हुआ चित्त और दूसरी है विवेक की ओर झुका हुआ चित्त। पहली अवस्था का अनुभव तो प्राय: सभी करते हैं, जबकि दूसरी अवस्था का अनुभव केवल वही कर पाते हैं जो अपने चित्त को परिष्कृत करने के प्रयासों में लीन हैं। इन दोनों अवस्थाओं को स्पष्ट करने वाली योगवाशिष्ठ की एक कथा है। योग वाशिष्ठ में इसे वीतहव्य का वृत्तान्त नाम दिया गया है। इस कथा के मनन से सूत्र का सत्य स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है।

इस कथा को सुनाते हुए महर्षि वसिष्ठ ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से कहा- विन्ध्याचल की कन्दरा में वीतहव्य नाम का एक तपस्वी रहता था। उसके मन में सांसारिक विषय भोगों की बड़ी तीव्र कामना थी। इसलिए उसने तरह-तरह के काम्य कर्म किए, सकाम अनुष्ठान किए और उनके फल भोगे। फिर भी उसके मन को किसी तरह की तृप्ति नहीं हुई। हमेशा ही कोई न कोई भोग वासना उसके मन में बनी रहती। अपनी इस स्थिति पर विचार करके उसे भारी विषाद हुआ। तब उसने निश्चय किया कि पूर्ण तृप्ति और शान्ति प्राप्त करने का उपाय केवल विवेक ज्ञान से उपजी समाधि है। यह सोचकर उसने अपने लिए कुटी बनायी और उसके भीतर पद्मासन लगाकर बैठ गया और इस तरह विचार करने लगा- ''आखिर मैं विषयों के पीछे क्यों दौड़ता हूँ? क्योंकि मैं सोचता हूँ कि इन्हें

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भोगने से मुझे आनन्द मिलेगा। परन्तु अब तक इतने दीर्घकाल तक अनेकों भोग भोगने के बाद भी मुझे आनन्द न मिल सका। इसलिए यह विचार ही गलत है। कितने अचरज की बात है कि जो विषय भोग थोड़े समय पहले हमें परम आनन्द का उद्‌गम दिखाई पड़ता था और जिसे प्राप्त करना हमें अपने जीवन का ध्येय व सौभाग्य लगता था, उसे पाने और भोग लेने के बाद वही आनन्दरहित व निरर्थक लगने लगता है। इससे स्पष्ट है कि आनन्द भोग में नहीं है। यह केवल भ्रम भरी भटकन है। इसी भ्रम में पड़कर सभी जीवात्माएँ संसार समुद्र में गोते खा रहे हैं। पहले सोचते हैं कि आज इसे पाना है, फिर जब वह मिल जाता है तो सोचने लगते हैं कि कल-परसों जैसे-तैसे इससे पीछा छुड़ाना है।''

निरन्तर-अनवरत ऐसा विचार करते हुए वीतहव्य के मन में विषय भोग से वैराग्य होने के साथ उसमें विवेक ज्ञान का उदय होने लगा। तब उसने अनुभव किया कि जो इन्द्रियाँ उसे भटकाती रही, जिन्हें वह अपना स्वरूप समझता रहा, वे सभी इन्द्रियाँ मन व प्राण के साथ सम्बन्ध हुए बिना निष्क्रिय और जड़ है। मन ही है जो इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध रखकर भोग की अनुभूति पाता है। इसी तरह इन्द्रियों की सारी क्रियाएँ प्राण के आधार पर हैं। इस तरह विचार करते हुए वीतहव्य इन्द्रिय व उनके विषयों के वश में न रहा। ऐसा होने के बाद उसने विचार किया कि ये मन व प्राण भी आत्मा नहीं हो सकते। क्योंकि मन तो चंचल है और प्राण जड़ है। लेकिन आत्मभाव तो सदा स्थिर व स्वयं प्रकाश है। आत्मा तो सब विषयों का साक्षी, सदा एक रूप और निर्विकार है। आत्मा में तो विकास सम्भव नहीं है। जबकि मन विकारवान व चंचल है। विकारों का ज्ञान तभी हो सकता है जबकि कोई निर्विकार द्रष्टा उसका निरीक्षण करता हो।

मन न तो अपने आपका अनुभव करता है और न किसी दूसरे विषय का। आत्मा को ही प्राण का अनुभव होता है और प्राण की शक्ति आत्मा के आधीन है। इसी प्रकार विचार करने पर वीतहव्य को यह अनुभव होने लगा कि मन व प्राण से परे इनका द्रष्टा और संचालक आत्मतत्त्व है। इसमें ही स्थित होना ठीक है। बुद्धि भी जो मन से कुछ अधिक स्थिर जान पड़ती है, आत्मा नहीं हो सकती, क्योंकि बुद्धि में भी विकार होते हैं और आत्मा को बुद्धि का ज्ञान होता है। मन व बुद्धि दोनों ही गहरी निद्रा में शान्त हो जाते हैं किन्तु आत्मा का अनुभव वहाँ पर भी होता है। इसलिए आत्मा बुद्धि से अधिक स्थायी, बुद्धि की द्रष्टा और

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गहनतम तत्त्व है। उसमें स्थिति प्राप्त कर लेने पर ही शान्ति का अनुभव हो सकता है।

इस प्रकार विचार करते-करते और आत्मतत्त्व का ध्यान करते-करते वीतहव्य को समाधि लग गयी। उसकी बुद्धि, मन, प्राण, इन्द्रिय और शरीर सभी स्थिर हो गए और इस स्थिति में वह बहुत काल तक शिलावत् बैठा रहा। इस निर्विकल्प समाधि के पश्चात् जब उसकी चेतना बहिर्मुख हुई तो उस अवस्था में भी वह आत्मभाव में रहने लगा। अब उसका जीवन विवेकज्ञान में प्रतिष्ठित था। न कुछ उसके लिए उपादेय था और न हेय था। न किसी वस्तु के प्रति उसमें राग था और न द्वेष। इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियोचित और शरीर और मन द्वारा शरीर व मन के करने योग्य कर्म करके वह शान्त रहता था। उसे हर समय परमानन्द का अनुभव होता रहता था। इस प्रकार विवेक ज्ञान सम्पन्न जीवनन्मुक्त अवस्था में बहुत समय रहने के पश्चात् वीतहव्य की चेतना में विदेह मुक्ति की कैवल्य अवस्था में प्रवेश करने का विचार हुआ। यह सोचकर उसने विचार करना आरम्भ किया। अपने संसार और जीवन की एक-एक वस्तु को उसने क्रमिक रूप से विदा किया और अपने आप को सबसे निर्मुक्त करके परम शान्त, सत्ता सामान्य, तुरीयातीत, कैवल्य में स्थित करके सदा के लिए शान्त हो गया। विवेक ज्ञान से कैवल्य तक का पथ यही है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

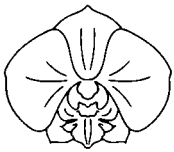

निर्लिप्त होता है योगी का जीवन

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग आन्तरिक रूपान्तरण को जन्म देते हैं। अन्तर्चेतना में कुछ ऐसा घटित होता है जिसे नवजन्म व नवजीवन की संज्ञा दी जा सकती है। आकृति तो वही पहले जैसी बनी रहती है, परन्तु प्रकृति परिवर्तित हो जाती है। चिन्तन, चेतना व चित्त बदल जाते हैं। जीवन के प्रति दृष्टिकोण, जीवन दृष्टि नयी हो जाती है। यह एक ऐसा अहसास है, जिसका अहसास वही पा सकता है, जिसे यह मिला है। मिठास की अनुभूति मीठा खाने वाले को मिलती है। खटास वही अनुभव करता है जो खट्टा खा रहा हो। शब्दों में इसकी चर्चा, इस पर किए गए तर्क-वितर्क कितने ही सम्मोहक हों, वे सब मिलकर भी इनकी अनुभूति नहीं प्रदान कर सकते। चित्त में जब विवेक ज्ञान का प्रकाश जब प्रकाशित-प्रसारित होने लगता है, तो वह अनुभव बस अनुभव से जाना जा सकता है। तर्क, विचार, शब्द सब मिलकर इसका अनुभव नहीं दे सकते।

यह स्थिति जीवन के सामान्य क्रम के ठीक विपरीत है। सामान्य क्रम में तो चित्त वासनाओं से चित्रित होता है। जीवन नए-नए संस्कारों व कर्मबन्धनों में फँसता-उलझता चला जाता है। यह क्रम अपने में नयी-नयी कड़ियों को जोड़ता है और फिर यह सिलसिला चलता जाता है। लेकिन जब चित्त में विवेक ज्ञान का उदय होता है तो फिर यह क्रम उलट जाता है। कर्मबन्धन की ओर अभिमुख यात्रा कैवल्य की ओर उन्मुख व अभिमुख हो जाती है। जीवन की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुभूतियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। परिवर्तित जीवन दृष्टि नए ढंग से सब कुछ देखने लगती है। क्षण प्रति क्षण यह परिवर्तन होता जाता है। जीवन होते हुए भी जीवनमुक्त होने की अनुभूति होने लगती है।

इस अनुभूति को योगऋषि पतंजलि ने अगले सूत्र में व्यक्त किया है-

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ ४/२७ ॥

शब्दार्थ= **तच्छिद्रेषु**= उस (समाधि) के अन्तराल में; **प्रत्ययान्तराणि**= दूसरे पदार्थों का ज्ञान; **संस्कारेभ्यः**= पूर्वसंस्कारों से होता है।

भावार्थ= ऐसा योगी पूर्व संस्कारों के अनुसार संसार में व्यवहार करता है।

सामान्य जीवन व सामान्य जन के लिए इस सूत्र की अनुभूति में बड़ा अनोखापन है। बड़ी विचित्रता है। हम सबके मन में, इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठकों के मन में यह सवाल उठ सकता है कि जीवनमुक्त पुरुष दैनंदिन जीवन में सम्पूर्ण रूप से कैसे भाग लेते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में इस सूत्र की व्याख्या समाविष्ट है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए यह कहना है कि जब हम होशपूर्ण होते हैं, जब हम जागे हुए होते हैं, तो हम सहज-स्फूर्त होते हैं। ऐसे में किसी योजना को मन में नहीं रखते, क्योंकि तब मन नहीं होता। जीवनमुक्त पुरुष क्षण-क्षण प्रतिसंवेदन करते हैं- जैसी स्थिति होती है, उनकी कोई योजना नहीं होती, कैसे करें- इसकी कोई धारणा नहीं होती। वे किसी बंधी-बंधाई विधि में नहीं चलते। वे तो बस प्रतिसंवेदन करते हैं। उनका प्रतिसंवेदन किसी अनुगूँज की भाँति होता है। जब हम पहाड़ पर जाते हैं और आवाज करते हैं तो पहाड़ियाँ उसे गुँजा देती हैं।

ऐसा बस इसलिए होता है क्योंकि वे पहाड़ियाँ प्रतिसंवेदित होती हैं। जब हम सितार बजाते हैं, तो सितार के पास कोई और कैसे प्रश्न नहीं होते। हाँ, हमारे मन में बजाते समय कोई विधि या कोई बात हो सकती है कि क्या बजाना है, क्या गाना है, लेकिन सितार? वह तो बस प्रतिसंवेदित करता है, हमारी अंगुलियों को। बस जीवनमुक्त पुरुष ऐसे ही होते हैं एकदम शून्य, खाली। वह सदा ही समाधि में रहते हैं। सामान्य व्यवहार के लिए वह प्रतिसंवेदित होते हैं। प्रतिसंवेदन के बारे में यह बात समझ लेना जरूरी है कि प्रतिसंवेदन-प्रतिक्रिया नहीं है। प्रतिक्रिया, क्रिया के उत्तर में की जाती है। इसमें मन का सोच-विचार, राग-द्वेष सभी कुछ शामिल होता है। सामान्य जीवन क्रम में हम सब ऐसी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनेकों प्रतिक्रियाएँ करते हैं। लेकिन प्रतिसंवेदन शून्यता से आती है। इनमें निर्विचार का प्रसाद होता है। इनमें कोई राग-द्वेष नहीं होता है।

जीवनमुक्त पुरुष प्रतिसंवेदन करते हैं, प्रतिक्रिया नहीं। सामान्य क्रम में जब हम प्रतिक्रिया करते हैं, तो हमारे मन में विचार रहता है कैसे, क्या ? जब हम प्रतिक्रिया करते हैं तो वह किसी पूर्व निर्धारित धारणा से निकली है। लेकिन जब हम किसी जीवनमुक्त पुरुष के पास जाते हैं, तो वे किसी पूर्व निर्धारित धारणा से उत्तर नहीं देते। सच यही है कि उनके पास कोई धारणा होती ही नहीं है। उनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं होता, कोई धारणा नहीं होती। कोई वैचारिक सिद्धान्त नहीं होते। वे शुद्ध रूप से प्रतिसंवेदित होते हैं। वे उस परिस्थिति के प्रति संवेदन करते हैं।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव का जीवन ऐसा ही था। उनका व्यवहार कई बार विचित्र व अनोखा होता था। कई बार यह सब कुछ समझ में नहीं आता था। दिन में दोपहर के समय उनके पास कुछ लोग मिलने के लिए आते थे। बड़ी सहजता से मिलते थे वह। उस समय हँसी-मजाक, क्रोध, करुणा सभी देखने को मिला करता था। उनके पास एक व्यक्ति आया तो बातचीत क्रम में वह उससे बोले- ''देख बेटा! अब तेरी नौकरी लग गयी है ? शादी कर ले। शादी करके रहना। गृहस्थ जीवन में रहकर अपने दायित्वों का पालन करना और साधना भी करना।''

इसके थोड़े ही समय के बाद एक दूसरा व्यक्ति आया। उससे भी उन्होंने प्रेमपूर्ण बातचीत की। बाद में उससे कहा- ''बेटा! तू शादी कभी मत करना। देश की सेवा करना। शादी में रखा ही क्या है। शादी से कभी किसी का भला हुआ, जो तेरा हो जाएगा।'' थोड़े ही समय में दो विपरीत बातें, विरोधी विचार सुनकर बड़ा विचित्र-सा लगा। समझ नहीं आया कि गुरुदेव आखिर क्या कह रहे हैं। उनके चले जाने के बाद रहा नहीं गया तो पूछ लिया- ''गुरुदेव! शादी करनी चाहिए या नहीं ?'' इस सवाल पर वह जोर से हँस दिए और बोले- ''देख बेटा! जो व्यक्ति पहले आया था, उसके लिए शादी करना ठीक है। शादी करके वह अपने पूर्वकृत कर्मों से मुक्त होगा। गृहस्थ जीवन उसके लिए श्रेष्ठ है। लेकिन जो बाद में आया था, उसके लिए शादी न करना ही ठीक है। वह अभी थोड़े दिन पहले ही सेना में अफसर बना है। उसके कर्म लेख में अधिक आयु

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नहीं है। थोड़े ही समय बाद उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। उसे वीरगति प्राप्त होगी। ऐसी स्थिति में विवाह उसके लिए उचित नहीं है।''

यही है प्रतिसंवेदन, जो सामने वाले के जीवन की गहनता में छुपे हुए भाग्य विधान को देखकर उनकी आन्तरिक शून्यता से उभरे और व्यक्त हुए। प्रकट में इनमें भारी विरोधाभास है, लेकिन अप्रकट में केवल करुणा है। उनके उत्तर में न तो कोई धारणा काम कर रही थी और न कोई विचारणा। बस अनन्त शून्यता से सहजतापूर्वक करुणा का अवतरण होता था। जीवन मुक्त पुरुष इसी तरह से प्रति संवेदित होते हैं। उनका हर कर्म पूर्व संस्कारों के अनुरूप होते हुए भी मौलिक होता है। उनमें सदा ही गहरे तल पर अंतस सत्ता की एक अनवरत धारा बहती रहती है। जीवनमुक्त पुरुष सदा व्यक्ति में, स्थिति में झांकते हैं। स्थिति ही निर्णय लेती है न कि उनका मन। सच तो यह है कि उनमें मन होता नहीं है। उनमें तो सदा शून्यता ही वास करती है। इसी शून्यता से अनवरत ईश्वरीय करुणा उनसे भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

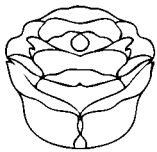

विवेकज्ञान से सम्भव है संस्कारों का विनाश

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों के परिणाम में विवेकज्ञान प्रकाशित व प्रसारित होने पर संस्कार बन्धन का कारण नहीं बनते। इस अवस्था में जो संस्कार बने और बचे रहते हैं, उनकी स्थिति भुने हुए बीजों की तरह रहती है। सामान्यक्रम में बीज उचित परिस्थितियाँ पाकर अंकुरित होते हैं। प्रत्येक स्वस्थ व सामान्य बीज में यह सम्भावना हमेशा रहती है कि यदि उर्वर भूमि, उचित मात्रा में जल, वायु, समुचित मात्रा व सही समय में सूर्य का प्रकाश व ऊष्मा मिले तो वह अंकुरित व विकसित होकर पौधे व वृक्ष का रूप धारण कर सकता है। प्राय: ऐसा होता भी है। लेकिन यदि उसी बीज को भून दिया जाय, तो वह दग्ध बीज किन्हीं परिस्थितियों में अंकुरित व विकसित नहीं हो सकता। दग्धबीज के लिए हम कितनी ही अच्छी परिस्थितियाँ जुटा लें, लेकिन उसमें अंकुरण सम्भव नहीं। उर्वरभूमि, जल की नमी, सुखद वायु व सूर्य का प्रकाश एवं ऊष्मा ये सब मिलकर भी उसे न तो अंकुरित कर सकते हैं और न ही विकसित कर सकते हैं। ठीक यही स्थिति विवेकज्ञान का प्रकाश होने पर संस्कारों की हो जाती है। उनके कारण नए संस्कार या कर्म बन्धन का जन्म सम्भव नहीं रह जाता।

विवेक ज्ञान प्राप्त करने वाले योगी को समाधि के अन्तराल में दूसरे पदार्थों का ज्ञान पूर्व संस्कारों से होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह अपने व्यक्तित्व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के अनुसार सामान्य सांसारिक व्यवहार व बर्ताव करने में सक्षम होता है। उसके जीवन की सामान्य गतिविधियों में कोई बाधा नहीं पहुँचती। हाँ, वह मानसिक क्रियाकलापों से, राग, द्वेष व आसक्ति से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होता है। वह आग्रहों, धारणाओं, विचारणाओं व सुनिश्चित किए गए सिद्धान्तों से मुक्त होने के कारण न तो कोई योजना बनाता है और न ही प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

उसमें तो केवल प्रतिसंवेदन उठते हैं जो स्थिति के अनुरूप स्व स्फूर्त होते हैं। यद्यपि क्लेशों की भाँति इन दग्धबीज सदृश संस्कारों का विनाश सम्भव है। इसे सूत्रकार ऋषि अगले सूत्र में कहते हैं-

हानमेषां क्लेशवदुक्तम्॥ ४/२८॥

शब्दार्थ= **एषाम्**= इन संस्कारों का; **हानम्**= विनाश; **क्लेशवत्**= क्लेशों की भाँति; **उक्तम्**= कहा गया है।

भावार्थ= इन संस्कारों का विनाश क्लेशों की भाँति कहा गया है।

पंच क्लेशों के नाश की चर्चा सूत्रकार महर्षि ने दूसरे पाद के अर्थात् साधनपाद के दसवें सूत्र में की थी। इसमें उन्होंने कहा था- **'ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः (२/१०)'** अर्थात्- वे सूक्ष्मावस्था को प्राप्त क्लेश प्रतिप्रसव साधन के द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने यहाँ पर इन सूक्ष्म क्लेशों को नष्ट करने के लिए प्रतिप्रसव प्रणाली बतायी है और यह प्रतिप्रसव प्रणाली तभी कारगर है, जबकि ये पंचक्लेश क्षीण और सूक्ष्म कर लिए गए हों। इन्हें सूक्ष्म व क्षीण करने के लिए भी उन्होंने इसी दूसरे पाद अर्थात् साधनपाद के दूसरे सूत्र में इसका विधान बताया है। इसमें उन्होंने कहा है- **'समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च (२/२)'** अर्थात् इससे अर्थात् क्रियायोग से समाधि सिद्ध होती है और क्लेश क्षीण और सूक्ष्म होते हैं।

अब इस प्रकरण में महर्षि संस्कारों के नाश के लिए क्लेश के नाश करने की विधि को उपयोगी बताते हैं। यहाँ विचारणीय तत्व यह है कि ये संस्कार नष्ट तभी होंगे, जब क्लेशों की भाँति क्रियायोग से प्राप्त विवेकज्ञान द्वारा दग्ध बीज की भाँति हो गए हों। जब तक इन्हें दग्ध नहीं किया जाता है और क्लेशों को सूक्ष्म व क्षीण नहीं किया जाता, तब तक इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। अर्थात् प्रतिप्रसव प्रणाली का उपयोगी इसी अवस्था को प्राप्त होने पर किया जा सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रतिप्रसव बहुत महत्त्वपूर्ण प्रणाली है। यह प्रक्रिया है कारण में फिर से समावेश होना, कार्य को कारण तक लौटा लाना। इसे प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया भी कह सकते हैं। पश्चिम में एक वैज्ञानिक हुए हैं जैनोवा। इन्होंने प्राइमल थेरेपी की खोज की है। उनकी यह प्राइमल थेरेपी प्रतिप्रसव का ही अंग है। जेनोव अपनी इस चिकित्सा में सिखाते हैं बचपन तक की वापसी। उनका कहना है कि यदि कोई बात होती है मुश्किल, तो फिर लौटना उसके स्रोत तक, जहाँ से यह आरम्भ हुई। क्योंकि किसी भी समस्या का सम्पूर्ण व सार्थक समाधान तब तक सम्भव नहीं है जब तक उसकी जड़ तक न उतरा जाय। परिणाम सुलझाए जा नहीं सकते, उन्हें कारण तक लौटाया जा सकता है। यह ऐसा होता है जैसे कि एक वृक्ष है और यदि हम नहीं चाहते, उसका होना और हम केवल उसकी टहनियों को काटते जाते हैं, पत्तों को काटते जाते हैं, तो ये टहनियाँ और पत्ते फिर से फूट पड़ेंगे। आखिरकार जड़ों तक जाना ही पड़ेगा।

जैनोव ने जब इस विधि की खोज की, तो सम्भवत: उन्हें पता भी न होगा कि उनकी इस विधि को अधिक सम्पूर्ण व प्रभावकारी ढंग से महर्षि पतंजलि हजारों वर्ष पूर्व ही खोज चुके हैं और उन्होंने इसे प्रतिप्रसव प्रणाली कहा। जिसमें उन्होंने बताया, सिखाया कि केवल कारण को तोड़ा जा सकता है। यदि जड़ों को काटा जाएगा तो वृक्ष अपने आप गिर जाएगा। लेकिन शाखाओं और पत्तों को काटने के बाद हम यह आशा नहीं कर सकते। प्रतिप्रसव एक सुन्दर शब्द है। प्रसव का अर्थ है जन्म। जब कोई बच्चा पैदा होता है तो उसे कहते हैं प्रसव। प्रतिप्रसव का मतलब है कि हम फिर से स्मृति में उत्पन्न हुए और अपने जन्म तक लौट गए, उस प्रघात तक जब कि हम उत्पन्न हुए थे और उसे हम जीते हैं। याद रखने की बात यह है कि हम उस क्षण को केवल याद नहीं करते, बल्कि उसमें जीते हैं।

कुछ इसी तरह पंच क्लेशों व संस्कारों के साथ भी करना होता है। अन्तिम क्लेश है अभिनिवेश, जीवन की लालसा और प्रथम है अविद्या- जागरुकता का अभाव। अन्तिम को विसर्जित होना है प्रथम तक। अन्तिम को ले आना है प्रथम तक। पतंजलि कहते हैं कि पीछे की ओर आओ। आखिर हम जीवन से चिपकते क्यों हैं ? क्योंकि आसक्तियाँ हैं। राग-द्वेष का अम्बार भरा है हमारे मन-अन्त:करण में। और यह राग-द्वेष सिर्फ इसलिए है क्योंकि; इसे हमारे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अहंकार द्वारा पोषित सिञ्चित किया जाता है और यह अहंकार केवल इसलिए सम्भव हो सका क्योंकि; हम जागरुक नहीं हैं। हम अविद्या से घिर गए हैं। जागरुकता उत्पन्न हुई कि समझो अविद्या गिर गयी।

ठीक यही स्थिति संस्कारों के साथ भी है। संस्कार हमारी गहरी स्मृतियाँ ही तो हैं। और ये स्मृतियाँ अभिनिवेश या आसक्ति का ही एक रूप हैं। आसक्ति या तो नकारात्मक होती है द्वेष के रूप में अथवा सकारात्मक होती है राग के रूप में। और आसक्ति के ये दोनों रूप अहंकार के बिना सम्भव नहीं हैं। अहंकार ही आसक्ति को सम्भव व समर्थ बनाता है। इसके साथ यह सच भी जुड़ा हुआ है कि अहंकार कैसा भी हो, कितना भी समर्थ हो, लेकिन अज्ञान के बिना, जागरुकता के बिना इसकी सम्भावना नहीं हो पाती। इस जागरुकता के साथ ज्ञान में, बोध में, होश में न तो संस्कार रह जाते हैं और न क्लेश। तादात्म्य विसर्जन के साथ अज्ञान व आसक्ति का विसर्जन होता चला जाता है और यह प्रक्रिया, यह प्रणाली तब तक अविराम बनी रहती है, जब तक पुरुष अपने स्वरूप को पहचान नहीं लेता, उसमें प्रतिष्ठित नहीं हो जाता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

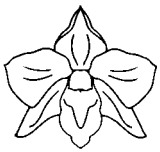

विवेक-वैराग्य का शिखर है- धर्ममेघ समाधि

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग हमारी अन्तर्चेतना में प्रकाश के अवतरण व उपस्थिति को सम्भव बनाते हैं। अभी सामान्य क्रम में हमारी वर्तमान जीवन चेतना इससे वंचित है। सामान्य जीवन एक प्रकार की मूर्च्छा है, एक प्रकार का सम्मोहन है। कुछ ऐसा है जैसे कि हम नींद में चल रहे हों, नींद में काम कर रहे हों। ऐसी अवस्था में हम नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं ? ऐसा इसलिए है क्योंकि हम आलोकित नहीं हैं। हमारा सारा अस्तित्त्व अन्धकार में डूबा है। हमने प्रकाश के विषय में सुना अवश्य है, पढ़ा और जाना भी है लेकिन अनुभव कभी नहीं किया। लेकिन हमारी ये प्रकाश से सम्बन्धित जानकारियाँ कभी प्रकाश नहीं बन सकी हैं। बल्कि उल्टे अवरोध बन गयी हैं। इन जानकारियों के कारण हमने स्वयं को झूठी तसल्ली दे रखी है, प्रकाश के बारे में। इसी वजह से हम प्रकाश की ओर गति नहीं कर रहे। हमारी आँखों को खोलने की कोशिश भी नहीं कर पा रहे। महर्षि पतंजलि के सूत्र हमारे ये सभी अवरोध एक-एक करके हटा देते हैं और हमारी आँखों को खोलकर प्रकाश की अनुभूति देते हैं।

जिस तरह से क्लेश नष्ट हो सकते हैं, ठीक उसी तरह संस्कारों का नाश भी सम्भव है। क्लेशों के नाश के लिए सूत्रकार महर्षि ने प्रति प्रसव प्रणाली का उल्लेख किया है। इसका मतलब है कि कारण को जानने से कार्य का नाश

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सम्भव है। इसके लिए संस्कारों से लड़ने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता तो सचेत होने की है। इनकी गहराई में जाने की है। ज्यादा से ज्यादा सजगतापूर्वक कारण को खोजने की है। एक बार कारण खोज लिया और वह विलीन हो गया तो कार्य नहीं बच पाएगा, उसे स्वयं तिरोहित होना पड़ेगा।

ऐसा कहकर सूत्रकार महर्षि अपने अगले सूत्र को कहते हैं-

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥

॥४/२९॥

शब्दार्थ= **प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य**= जिस योगी का विवेकज्ञान की महिमा में भी वैराग्य हो जाता है, उसका; **सर्वथा विवेकख्यातेः**= विवेकज्ञान सर्वथा प्रकाशमान रहने के कारण उसको; **धर्ममेघः समाधिः**= धर्ममेघ समाधि प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ= विवेकज्ञान की महिमा में वैराग्य होने पर धर्ममेघ समाधि हो जाती है।

आँखें खुलना अनोखी घटना है। इसके घटित होने पर सम्पूर्ण जीवन बदल जाता है। सारा संसार बदल जाता है। सम्पूर्ण अनुभूतियाँ बदल जाती हैं। अभी तो ऐसा है, जैसे कि हम एक अंधेरी कोठरी में रह रहे हैं। हमने प्रकाश के विषय में सुन रखा है, उसे देखा नहीं है। अब भला प्रकाश के बारे में सुनने से क्या भला होना है ? प्रकाश कोई सुनने वाली चीज तो है नहीं। इसे तो देखा जा सकता है। कान माध्यम नहीं बन सकते, प्रकाश को जानने का, इसकी अनुभूति पाने का। इसके लिए तो आँखें माध्यम हैं। आँखों से प्रकाश की अनुभूति पायी जा सकती है। अभी तक प्रकाश के बारे में सुनते रहे और मान लिया कि हम प्रकश को जान गए।

हाँ, यह ठीक है कि हमने प्रकाश के बारे में सुन रखा है। बार-बार इसे सुन रहे हैं। कथाओं में, प्रवचनों में इसकी चर्चा होती रहती है और हम उत्साहपूर्वक सुनने पहुँच जाते हैं। लेकिन सुनने से तो बात नहीं बनती। यह तो कुछ वैसी बात हो गयी, जब कोई यह कहने लगे कि हमने संगीत को देखा है। अब कोई संगीत को देखेगा कैसे ? यह तो बेतुकी बात हो गयी। कुछ इसी तरह की बेतुकी बात तब होती है, जब हम कहते हैं कि हमने प्रकाश को सुना है। प्रकाश सुना जाने वाला नहीं देखा जाने वाला सत्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यह तब सम्भव हो पाता है, जब हम नींद से जगते हैं। जब हम अपनी आँखें खोलते हैं। आँखें खोलने पर सामने सब कुछ नया आ जाता है। जिसे कभी देखा नहीं, वह दिखाई देने लगता है। जिसकी अनुभूति कभी नहीं पायी, उसकी अनुभूति होने लगती है। इसी अलौकिकता को, इसी असामान्यता को योग ऋषि पतंजलि विभूतियाँ कहते हैं। इनकी विलक्षणता को, इसी असामान्यता को योगऋषि पतंजलि विभूतियाँ कहते हैं। इनकी विलक्षणता की चर्चा उन्होंने योगसूत्र के तीसरे अध्याय अर्थात् विभूतिपाद के अनेकों सूत्रों में की है। ये सभी विभूतियाँ सूक्ष्म प्रकृति का ज्ञान हैं, इनका विज्ञान हैं। प्रकृति के अन्य वैज्ञानिक धाराओं की तरह-इनका भी प्रयोग व उपयोग सम्भव है। लेकिन इस सम्भावना के साथ कतिपय अनुशासन भी जुड़े हैं। जिस तरह भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान की उच्च स्तरीय उपलब्धियों के साथ यदि मर्यादाएँ व वर्जनाएँ न बरती जाएँ तो मानवता का, जीवन और जगत का भारी अकल्याण सम्भव है। ठीक इसी तरह की सम्भावनाएँ यहाँ भी हैं।

विवेक ज्ञान होने पर जो विभूतियाँ उपलब्ध होती हैं, वे सभी योग साधक की उच्च कक्षा की परीक्षा लेती हैं। पहले से वह जिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता आया है, उसकी उच्चस्तरीय व जटिल परीक्षा यहाँ पर होती है। एक बार फिर से उसके विवेक और वैराग्य को कसौटी पर कसा व परखा जाता है। प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियाँ उसकी कड़ी परीक्षा लेती हैं कि अभी उसमें आसक्ति व अहंकार कितने अंशों में शेष है। अभी वह इस प्रकाश लोक में रहने का कितना अधिकारी बन पाया है। उसका विवेक इन सभी अलौकिकताओं के मध्य कितना सजग व प्रकाशित है। इसी तरह उसका वैराग्य इस स्तर पर आकर भी कितना प्रखर व प्रदीप्त है।

महर्षि ने तीसरे अध्याय के पचासवें सूत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख भी किया है। इसमें उन्होंने कहा है- **तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्॥ ३/५०॥** अर्थात् इन सभी विभूतियों में वैराग्य होने पर और आसक्ति व अहंकार जन्य सम्पूर्ण दोषों का क्षय होने पर कैवल्य की प्राप्ति होती है। यह कड़ी परीक्षा है और अन्तिम भी। इसे पूर्ण करने पर, इसमें उत्तीर्ण होने पर जीवन सचमुच धर्म में प्रतिष्ठित हो जाता है। हम साधना करते हुए धर्म पर, सत्य पर कितने आरूढ़ हैं, यह यहीं पर आकर प्रकाशित और प्रमाणित होता है। अगर यहाँ पर साधक और

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साधना में खरापन न हुआ तो अज्ञान का अंधियारा फिर से घिरने की सम्भावना होती है।

इसीलिए सूत्रकार महर्षि इस महत्त्वपूर्ण अवस्था को धर्ममेघ समाधि कहते हैं। सचमुच यहाँ पर बोध व जागरण अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँचता है। अधर्म की कोई चेष्टा यहाँ फलित नहीं होती। सभी तरह की परिष्कृति यहाँ पर अपने शिखर व चरम पर जा पहुँचती है। जिसने यह अवस्था पा ली, उसी के लिए शास्त्रों में कहा है- '**कुलं पवित्रम्, जननी कृतार्था:**'- कुल पवित्र हो गया और माता धन्य हो गयी। इसी को प्राप्त करने वाले के लिए उपनिषद कहते हैं '**तत्र को विधि: क: निषेध:**'- वहाँ क्या उचित है और क्या अनुचित। वह तो विधि-निषेध की सारी सीमाएँ लांघ गया। जिसने धर्ममेघ समाधि प्राप्त कर ली, उसके जीवन में अधर्म का लेश नहीं रह सकता। उसमें किसी तरह का कोई दोष सम्भव नहीं है। उसमें न तो अज्ञान सम्भव है और न इससे उपजने वाला कोई कल्मष। सचमुच धर्ममेघ समाधि पवित्रता का चरम शिखर है। इसमें धर्म की पराकाष्ठा व प्रतिष्ठा है। विवेकज्ञान की चरम अवस्था में ही इसकी प्राप्ति व प्रतिष्ठा होती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

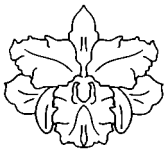

क्लेश-कर्म से रहित होता है- जीवनमुक्त योगी

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग धर्म में प्रतिष्ठित करते हैं। इसी के साथ इनसे धर्म के मर्म का बोध होता है। धर्म न तो प्रवचन में है, न शब्दों में। न तो तर्क में है और न किसी वेष में। धर्म के तत्त्व का, सत्य का और मर्म का बोध तभी होता है, जब चित्त परिष्कृत होता है। चित्त में विवेक ज्ञान का प्रकाश फैलता है। किसी पुस्तक के पन्नों में नहीं, विवेक ज्ञान के प्रकाश में धर्म का तत्त्व बोध होता है। यह बोध ही हमें यह अहसास दिलाता है कि धर्म का मर्म किसी तरह के कर्मकाण्ड की व्यापकता में नहीं है। यह तो चित्त के शान्त, शुद्ध व शून्य होने में है। केवल ऐसी अवस्था में ही धर्म का ज्ञान होता है। इसके बिना तो केवल शब्दों का जाल रहता है, जो किसी न किसी से जीवन को उलझाता, फँसाता और बाँधता है। बन्धन से मुक्ति की यात्रा तो पवित्रता व प्रकाश से होकर जाती है। प्रकाश का पथ मुक्ति का पथ है। अन्यत्र तो बस सर्वत्र बन्धन के षडयन्त्र है। जो इस सच को पहचान लेता है, वह अपने ही आप में धर्म में प्रतिष्ठित हो जाता है।

जिस योगी को विवेकज्ञान की महिमा से भी वैराग्य हो जाता है, उसका विवेक ज्ञान सर्वथा प्रकाशमान रहने के कारण उसको धर्ममेघ समाधि प्राप्त हो जाती है। विवेकज्ञान की महिमा विभूतियों में प्रदर्शित होती है। ये सभी विभूतियाँ योगी की पवित्रता, विवेक और वैराग्य की कसौटी होती है। जैसे-जैसे योग साधना के प्रभाव से पवित्रता बढ़ती है, वैसे-वैसे प्रकृति

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विभूतियों को योग साधक के सम्मुख प्रकट करती है। ये विभूतियाँ योगी को ऐसी सामर्थ्य, शक्ति व क्षमता प्रदान करती हैं, जिसे जीवन के सामान्य क्रम में देखा तो क्या सुना भी नहीं गया। इसी के साथ विवेक व वैराग्य की परीक्षा भी जुड़ी रहती है। जो इन्हें विवेक पूर्ण दृष्टि से देखता है और इनके प्रति वैराग्य बनाए रखता है। उसका विवेकज्ञान सर्वथा प्रकाशित रहता है। उसे ही धर्ममेघ समाधि प्राप्त होती है।

इस धर्ममेघ समाधि का सुफल महर्षि अगले सूत्र में कहते हैं-

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ४/३० ॥

शब्दार्थ= **ततः**= उस (धर्ममेघ समाधि) से; **क्लेशकर्म निवृत्तिः**= क्लेश और कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है।

भावार्थ= उस धर्ममेघ समाधि से क्लेश और कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है।

अविद्या-जागरुकता का अभाव, अस्मिता- अहंकार की अनुभूति, राग- आसक्ति, द्वेष-घृणा और अभिनिवेश- जीवन की लालसा। ये पाँच क्लेश हैं। इन्हीं पाँच से कर्मों का जाल रचा जाता है। ये क्लेश और कर्म अनेक रंगों में अनेक रूपों में जीवन में प्रकट होते हैं। अनेक घटनाक्रम इनसे जन्म लेते हैं और तब यह प्रक्रिया अन्तहीन चलती रहती है। सुख, दुःख, पुण्य, पाप, अंधेरे, उजाले के झूले में इसी कारण झूलता रहता है। इसमें न तो कोई विराम होता है और न विश्राम। इस पूरी प्रक्रिया में हलचलें हैं, अस्थिरता है, भ्रान्ति है। जिसका न तो निदान हो पाता है न समाधान। न कोई निरसन हो पाता है और न निराकरण। ऐसी विचित्र पहेली का हल तब निकलता है, जब विवेक ज्ञान का प्रकाश अविराम होता है। जब धर्ममेघ समाधि का अनुभव होता है।

ऐसे में हम जीवन में होते हुए भी जीवन मुक्त होते हैं। कहीं कोई अधूरापन नहीं होता। हर पल पूर्णता बनी रहती है। इस अवस्था में जीवन का सर्वथा एक नया परिचय प्राप्त होता है। जीवन एक नए ढंग से परिभाषित होता है। इसमें जीवन का एक नया आयाम प्रकट होता है। यदि हम सच्चा जीवन जीते हैं, तो इसकी झलक पा सकते हैं। ऐसी अवस्था में मृत्यु विश्राम का सुख लेकर आती है। कुछ ऐसे जैसे कि शाम आती है, रात उतरती है और हम तैयार होते हैं। जब हम ठीक तरह से आसक्ति व अहंकार रहित जीवन जीते हैं, तो हमें अधिक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जीवन की माँग नहीं होती क्योंकि तब हम अनुभव करते हैं कि अधिकता तो पहले से ही है। जितना हम माँग सकते हैं, उससे ज्यादा तो पहले से उपस्थित है। जितने की हम कल्पना कर सकते हैं, उससे ज्यादा तो पहले से ही दिया जा चुका है। यदि हम प्रत्येक क्षण को उसकी सम्पूर्ण प्रगाढ़ता तक जीते हैं, तो फिर हम सदा ही मृत्यु के लिए तैयार होते हैं।

यदि बिल्कुल अभी मृत्यु आ जाती है हमारे पास तो हम तैयार है क्योंकि अब कोई चीज अधूरी नहीं है। भविष्य के लिए हमने कुछ भी स्थगित नहीं किया है। हमने सुबह स्नान किया और उसका सम्पूर्ण आनन्द लिया। भविष्य की खातिर हमने किसी भी चीज को छोड़ा नहीं है। इसलिए यदि अभी मौत आ जाती है तो कोई भी समस्या नहीं है। मृत्यु आ सकती है और बिल्कुल अभी ले जा सकती है हमें। भविष्य की एक हल्की सी भी धारणा तक न होगी हमें। क्योंकि कहीं कुछ भी अधूरा नहीं है, कहीं कुछ भी अपूर्णता नहीं है। यही है जीवनमुक्त योगी के जीवन का दृश्य और दर्शन। जहाँ न तो कोई क्लेश है और न ही कोई कर्म।

क्लेश व कर्म की स्थिति में सामान्य जीवन क्रम में स्थितियाँ विपरीत होती हैं। इस अवस्था में क्लेशों के नए रूप, कर्मों की नए शृंखलाएँ अर्गला बन कर उपस्थित रहते हैं। इस अवस्था में हमारे लिए हर चीज अधूरी होती है। सुबह का स्नान तक हम ठीक तरह से नहीं कर सके क्योंकि उसके बाद कई काम करने थे और तब इस उलझन व उधेड़बुन में हम चूक गए। हम प्रतिपल भविष्य की चिन्ता में डूबे रहते हैं और वर्तमान से चूकते जाते हैं और जब यह चूकने की बात एक आदत बन जाती हैं तो हमारे हर कार्य अधूरे रह जाते हैं क्योंकि आखिर हम वही आदमी होते हैं जो चूक गया होता है। सुबह का स्नान, सुबह का सूर्य दर्शन, सुबह की प्रार्थना। ये सारे कार्य अधूरे बने रहते हैं और ये सभी बातें हमारे सिर पर मण्डराती रहती हैं। वह सब जो अधूरा छूट चुका है, वह क्लेशों को निरन्तर बढ़ाता है और कर्म के जाल को निरन्तर कसता रहता है और यह जीवन हमारी आदत बन जाता है। ऐसे में हमारे हर कर्म के साथ एक नए कर्म की शृंखला जुड़ी रहती है। जब हम स्नान कर रहे होते हैं तो भोजन की जल्दी होती है। जब भोजन कर रहे होते हैं तो ऑफिस जाने की अथवा काम पर जाने की जल्दी होती है। हमेशा ही अस्थिर बने रहते हैं। भले ही हम शारीरिक रूप से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कहीं भी बैठे होते हैं, पर हमारा मन भविष्य में सरक रहा होता है। यह अधूरा जीवन हमारे क्लेशों को कर्मों को बढ़ाता रहता है।

नए जन्म व नए जीवन की शृंखला हमेशा विनिर्मित हो रही होती है। जीवन के प्रति बढ़ता लोभ हमें जीवन मुक्त के स्थान पर जीवन बद्ध बनाता रहता है। ऐसे में हम भला बिल्कुल इसी क्षण मरना कैसे सहन कर सकते हैं ? ऐसा तो बस जीवन मुक्त व्यक्ति ही कर सकता है। वह आनन्दित होता है हर क्षण-हर पल। हर कर्म में उसके लिए हर चीज पूरी होती है। तभी तो महात्मा कबीर कहते हैं- 'कहै कबीर मैं पूरा पाया'। कबीर कहते हैं कि मैंने पूरा पा लिया। पूर्णता पा लिया। यह पूर्णता विवेक ज्ञान की पराकाष्ठा में है। यह धर्ममेघ समाधि में है क्योंकि यहाँ पर क्लेश व कर्म दोनों विसर्जित-विलीन हो जाते हैं। इस अवस्था में ऐसा कुछ भी नहीं रहता, जो अधूरा है, जिसे पूरा करने की चाहत है। यहाँ पर न तो कोई अतीत रह जाता है और न भविष्य। न कोई स्मृतियां बचती हैं और न कोई स्वप्न बचे रहते हैं। न संस्कार रह जाते हैं और न कर्म का अधूरापन रहता है। इस अवस्था में तो चित्त शान्त होता है, स्वच्छ होता है, शून्य होता है। यहाँ पर बस निरन्तर आनन्द प्रवाहित रहता है। यहाँ पर प्रकाश प्रवाहमान रहता है। धर्ममेघ समाधि क्लेश व कर्म से जीव के जीवन को सर्वथा निवृत्त कर देती है। उसे पूर्ण रूप से जीवनमुक्त कर देती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

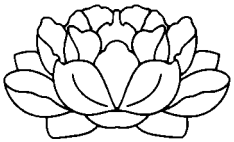

आवरण के हटते ही होता है- असीम ज्ञान

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग हमारे जीवन के अन्तस में क्रान्ति घटित करते हैं। यह ऐसी क्रान्ति होती है, जिससे समाज परिचित नहीं होता। हमें स्वयं अकेले उतरना पड़ता है इन प्रयोगों में। इसमें समूह, समुदाय के साथ नहीं उतरा जा सकता। भला हम कैसे किसी दूसरे को साथ लेकर समाधि में उतर सकते हैं ? हमारा निकटतम सम्बन्धी भी, हमारा सबसे समीपतम भी हमारे साथ नहीं हो सकता। जब हम इन प्रयोगों की गहनता व गहराई में बढ़ते हैं, तो बाहर की हर चीज छूटती जाती है। समाज, संस्कृति, शत्रु, मित्र, सम्बन्ध, सम्बन्धी, पत्नी, पति, बच्चे, पिता- हर चीज छूट जाती है धीरे-धीरे और तब एक घड़ी ऐसी आती है, जब हम स्वयं भी छूटने लगते हैं।

तभी होती है परम खिलावट। तभी होता है रूपान्तरण। तभी घटित होती है क्रान्ति। आखिर हम स्वयं भी तो समाज का हिस्सा हैं। इसी समाज के सदस्य हैं। इसी समाज में हम अपनी पहचान हिन्दू, मुसलमान, सिख और इसाई के रूप में करते हैं, कराते हैं। अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों के साथ यह सब बाहरी परिचय व पहचान छूट जाता है। धीरे-धीरे सभी से निकटता व समीपता छूटने लगती है और तब स्वयं से स्वयं के छूटने का क्रम भी आ जाता है। आखिर हमारा व्यक्तित्व भी तो समाज का ही हिस्सा है। इसे भी तो समाज ने ही प्रशिक्षित किया है। यह समाज द्वारा ही तो संस्कारित हुआ है। हमारा मस्तिष्क,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हमारा अहंकार, हमारा सोच-विचार, सब समाज द्वारा ही दिया हुआ है। उसे भी कैवल्य के परम पावन मन्दिर के बाहर ही छोड़ना होता है। तभी तो हम अपने परम एकान्त में प्रवेश करते हैं। कोई नहीं होता है यहाँ, स्वयं हमारा व्यक्तित्व भी नहीं।

योग के परम सत्य की अनुभूति यहीं होती है। इसीलिए यह आत्मगत है, क्रान्तिमय है, यहाँ विलक्षण क्रान्ति घटित होती है। दूसरी सारी क्रान्तियाँ मिथ्या हैं। जिन्होंने कभी पहले समाज में क्रान्तियाँ की, अगर आज वे वापस आ जाएँ तो हतप्रभ रह जाएँगे। वे सभी देखेंगे कि उन्होंने जो कुछ भी किया था, अब वैसा कुछ भी नहीं है। लेनिन, मार्क्स को अपने सूत्र, सिद्धान्त असत्य लगने लगेंगे। लेकिन पतंजलि का सत्य, उनके सूत्र प्रत्येक काल में हमारे आन्तरिक जीवन में क्रान्ति घटित कर सकते हैं। हमें जीवन रहते हुए भी जीवन मुक्त बना सकते हैं।

इस स्थिति के सत्य को महर्षि पतंजलि अगले सूत्र में कहते हैं-

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्॥ ४/३१॥

शब्दार्थ= तदा= उस समय; **सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्य**= जिसके सब प्रकार के आवरण और मल हट चुके हैं, ऐसा ज्ञान; **आनन्त्यात्**= अनन्त (सीमारहित) हो जाता है, इस कारण; **ज्ञेयम अल्पम्**= ज्ञेय पदार्थ अल्प हो जाते हैं।

भावार्थ= सभी आवरण व मल हट जाने के कारण ज्ञान सीमारहित अनन्त हो जाता है। इसी कारण ज्ञेय पदार्थ अल्प हो जाते हैं।

सूत्रकार महर्षि स्मरण कराते हैं कि जीवनमुक्त अवस्था, धर्ममेघ समाधि की अवस्था कहीं बाहर से नहीं आती। यह प्रकट होती है आवरण व मल को हटाने से। अपने चित्त को धोने व मांजने से, अशुद्धियों को हटाने से। ज्ञान के जिस प्रकाश को हम खोज रहे हैं, वह कहीं बाहर नहीं है, वह तो अपने ही भीतर है। इसलिए खोज होती है भीतर की ओर। यह यात्रा अन्तर्यात्रा है। इसकी कोई बाहरी मंजिल नहीं है। यह अन्तस यात्रा है हमें हमारे केन्द्र की ओर चलना है, केन्द्र पर पहुँचना है, जिसे हम खोज रहे हैं, वह सब तो पहले से हमारे में उपस्थित है। हमें तो आवरण हटाने हैं। मल को धोना है। परत दर परत अज्ञान है यहाँ। हीरा छुपा हुआ है कीचड़ में। हीरे को विनिर्मित नहीं करना है। हीरा तो मौजूद है- केवल कीचड़ की परतों को हटाना है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आवरण व मल के हट जाने की बात कहकर यहाँ मूलभूत बात कही गयी है। खजाना तो पहले से ही मौजूद है। बस चाबी नहीं मिल रही है। हमें चाबी को खोजना है, खजाने को नहीं। इस सूत्र में यही मूलभूत बात कही गयी है। सारी प्रक्रिया इसी पर निर्भर है। इसी को समझ लेना है। खजाने को विनिर्मित करना हो, तो बात जटिल हो जाती। इस पर संशय भी किया जा सकता है। पर यहाँ तो संशय, सन्देह जैसी कोई बात ही नहीं है। बस चाबी खोज लेना है, खजाना तो पहले से मौजूद है। एकदम निकट है, बस आवरण व मल की पर्ते हटा देनी हैं।

इसीलिए यह कार्य शल्य चिकित्सा जैसा है। यह औषधि चिकित्सा जैसा नहीं है। यहाँ कुछ जोड़ना नहीं है, बस उसमें से कुछ हटाना है। आवरण व मल को झाड़ देना है। उपनिषद् इसी को नेति-नेति विधि द्वारा समझाते हैं। तब तक हटाते जाओ, तब तक धोते और मांजते जाओ, जब तक सारी परतें हट न जाएँ। इन परतों को तब तक हटाना है, जब तक केवल हम ही न रह जाए। हमीं को बचना है हमारे केन्द्र में। हमारी चेतना में हमको प्रतिष्ठित होना है। इसे तो हटाया नहीं जा सकता। नेति-नेति आवरण व मल की प्रत्येक परत को कहते जाना है- नेति-नेति, यह नहीं है, यह नहीं है। इसी तरह से बढ़ते जाना है। यह भी नहीं, यह भी नहीं। जब केवल हम ही रह जाते हैं। इन्कार करने वाला और इन्कार करने को जब कुछ नहीं बचता, तो यह शल्य क्रिया पूरी हो जाती है। हम पहुँच जाते हैं, खजाने तक।

इसे ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। समझ लेने पर अन्तर्यात्रा आसान हो जाती है। हम सरलता से बढ़ सकते हैं- मार्ग पर। हमें यह समझ लेना है कि हम खजाने को भूल भले जाए, लेकिन खजाना खो नहीं सकता। हम यह तो भूल गए हैं कि ठीक-ठीक कहाँ है वह, लेकिन यह तय है कि वह है हमारे ही भीतर। हम इस बात पर पूरी तरह से आश्वस्त हो सकते हैं। इस बारे में कहीं कोई अनिश्चितता नहीं है। सच तो यह है कि हम इसे खोना भी चाहें तो इसे खो नहीं सकते हैं क्योंकि यह तो हमारी निजता है। यह कोई हमसे बाहर की बात नहीं है, यह अन्तर्निहित बात है। लोग कहते हैं कि हम आत्मा को खोज रहे हैं, परमात्मा को खोज रहे हैं। इसमें महर्षि कहते हैं कि खोजने जैसी तो कोई बात है भी नहीं। हमने इन्हें खोया कब जो खोज रहे हैं। इसके लिए तो अपनी अशुद्धियों को

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हटाना है। खोजने के चक्कर में हमें अपना वास्तविक कर्त्तव्य भूल गया है। हम अपने भीतर झांकना भूल गए हैं, बाकी सब जगह ढूँढ़ रहे हैं। मंदिर-मस्जिद, काबा-काशी के चक्कर लगा रहे हैं। संसार भर में भागते फिर रहे हैं सिवाय एक स्थान के- जहाँ हम स्वयं हैं। खोजने वाला ही मंजिल है।

जैसे-जैसे आवरण हटते हैं, मल छटते हैं, सब कुछ मौन और शान्त हो जाता है। ऐसे में कुछ नया नहीं मिलता। बस यह बात समझ में आ जाती है कि बाहर खोजने में ही सारी चूक हो रही थी। असली कार्य तो आवरण व मल हटाने का था। इसके सम्पन्न होते ही अनुभव हो जाता है। वह सदा से यहाँ उपस्थित है। ऐसा कोई एक क्षण भी नहीं था- जब वह यहाँ नहीं था और न कोई एक क्षण आगे कभी होगा क्योंकि आत्मा-परमात्मा कहीं बाहर नहीं है, स्वयं में ही है। वह हमीं हैं अपनी आत्यन्तिक महिमा में। वह हमीं हैं अपनी विशुद्धता में।

इस अनुभूति के साथ ज्ञान अनन्त, सीमारहित हो जाता है क्योंकि इसके बिना किसी का कोई अस्तित्त्व हो नहीं सकता। कोई ऐसा तथ्य नहीं है कोई ऐसा सत्य नहीं है, जो यहाँ और इसमें समाहित समाविष्ट न हो। इस अनुभूति को पा लेने पर जो ज्ञान का प्रकाश उमड़ता है, उसके सामने सभी ज्ञेय पदार्थ छोटे हो जाते हैं। अनन्त ज्ञान के सामने ज्ञेय लघु रूप हो जाता है। ऐसी अवस्था में सर्वज्ञता आ जाती है। जो कुछ जहाँ भी है वह सब का सब प्रकट व प्रशस्त हो जाता है। वैसे भी इस अनुभूति के बाद कोई अनुभूति शेष नहीं रह जाती।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

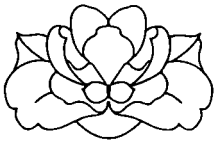

कृतार्थ हो जाता है योगी का जीवन

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग जीवन एवं जगत के प्रयोजन को पूर्णता प्रदान करते हैं। जगत जीवन की पाठशाला है। यहीं आकर, यहाँ रहकर जीवन की कला और कुशलता का प्रशिक्षण सम्भव है। जब तक यह प्रशिक्षण पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक पाठशाला और प्रशिक्षण दोनों की अनिवार्यता बनी रहती है। विद्यार्थी एक निश्चित व निहित उद्देश्य के लिए पाठशाला व उसकी कक्षा में प्रवेश लेता है। उसकी योग्यता व पात्रता जिस भी कक्षा में प्रवेश हेतु सही पायी जाती है, उसे उसी कक्षा में प्रवेश दिया जाता है। इस प्रवेश के पश्चात् उसके प्रशिक्षण व अध्ययन के क्रम का आरम्भ होता है। अपने प्रशिक्षण व अध्ययन में विद्यार्थी कितना प्रवीण व योग्य हो सका है, इसे जाँचने के लिए पाठशाला द्वारा परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। यह आयोजन पाठशाला के प्रबन्धक व अध्यापक मिलकर करते हैं। इनमें उत्तीर्ण होने पर उसे अगली कक्षा में प्रवेश मिलता है। अनुत्तीर्ण होने पर उसे उसी कक्षा में पढ़ना पड़ता है। यहाँ तक कि यदि वह उस कक्षा के योग्य भी नहीं है, तो उसे नीची कक्षाओं में भी भेजा जाता है।

जीवन व जगत के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही है। जगत प्रकृति द्वारा स्थापित की गयी पाठशाला है। इसका प्रबन्धन भी वही करती है। प्रशिक्षण का दायित्व भी उसी का है। जीवन के अनेक रूप यहाँ की विविध कक्षाएँ हैं। जगत केवल धरती तक सीमित नहीं है। विविध लोक-लोकान्तर इसमें सम्मिलित हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसी तरह से जीवन के सभी रूप केवल धरती में ही नहीं हैं। इन रूपों व प्रकारों का क्षेत्र सम्पूर्ण सृष्टि में अवान्तर लोकों में फैला हुआ है। इनमें से हम कहाँ किस रूप को पाने के योग्य हैं, यह हमारे चित्त की अवस्था पर निर्भर करता है। चित्त की अवस्था, उसमें संस्कार व कर्मराशि के अनुसार प्रकृति हमारे जीवन के स्वरूप व स्थान का निर्धारण करती है। हमें जहाँ भी जीवन मिला है, वहाँ की परिस्थितियाँ, परिवेश व परिदृश्य हमारे प्रशिक्षक की भूमिका निभाते हैं। यहाँ पर, इनके बीच में हम कितने योग्य अथवा अयोग्य हैं, इसकी परख पल-पल होती रहती है। परीक्षा का क्रम सतत-अविराम चलता रहता है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर जीवन उन्नत योनियों व उन्नत लोकों में जाता है। अनुत्तीर्ण होने व निकृष्ट आचरण के आधार पर प्रकृति उसे निम्न योनियों व निकृष्ट स्थानों पर भेज देती है और जीवन की सभी कक्षाओं व सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाने पर उसे जीवनमुक्त घोषित करते हुए कैवल्य का वरदान दे देती है।

जिसके सब प्रकार के आवरण व मल हट चुके हैं, ऐसा ज्ञान अनन्त हो जाता है। इस कारण ज्ञेय पदार्थ अत्यल्प हो जाते हैं। यह जीवन की श्रेष्ठतम अवस्था है। चित्त के परीक्षण की उच्चतम कसौटी है। इसमें चित्त एक ऐसी अवस्था में जा पहुँचता है, जहाँ उसमें न कोई आवरण रह जाता है और न मल। सामान्य क्रम में तो चित्त को संस्कारों के आवरण व कर्मों के मल घेरे रहते हैं। पंचक्लेशों की सघनता, उदारता इसे और भी बढ़ाती है। लेकिन जब जीवन में, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान का प्रवेश होता है। जब इसमें योग के प्रयोग सम्यक् रीति से किए जाते हैं, तो स्थितियाँ परिवर्तित होती हैं। चित्त के आवरण हटते हैं और मल छटता है। इस क्रम में एक ऐसी अवस्था भी आती है, जब चित्त इनसे सम्पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है और तब ज्ञान अपने चरम व परम पर पहुँच जाता है। जिसके सम्मुख ज्ञेय पदार्थ अत्यल्प हो जाते हैं।

ऐसी अवस्था आने पर होने वाली स्थिति को महर्षि अगले सूत्र में प्रकट करते हैं-

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्॥ ४/३२॥

शब्दार्थ= ततः= उसके बाद; **कृतार्थानाम्**= अपने काम को पूरा कर चुकने वाले; **गुणानाम्**= गुणों के; **परिणामक्रमसमाप्तिः**= परिणामक्रम (परिणाम सम्बन्धी सिलसिले की) समाप्ति हो जाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ= उसके बाद अपने काम को पूरा कर चुकने वाले गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति हो जाती है।

धर्ममेघ समाधि हो जाने पर प्रकृति के गुणों का प्रयोजन नहीं रह जाता। पुरुष के लिए धर्ममेघ समाधि का अनुभव करने वाली आत्मा के लिए अब इनकी उपयोगिता नहीं रहती। वह पुरुष जिसने धर्ममेघ समाधि का अनुभव किया, वह कृतार्थ हो जाता है। प्रकृति के गुण जिन्होंने उसे यह अनुभव प्रदान करने में सहयोग किया, वे भी कृतार्थ हो जाते हैं। कृतार्थ शब्द में गहरी अनुभूति छिपी है। कृतार्थ शब्द में दो शब्दों का जोड़ है। इनमें से पहला है कृत और दूसरा है अर्थ। कृत का मतलब है जो किया जाता है, जो किया जा रहा है। अर्थ है उसका सार, उसका मर्म, उसका निष्कर्ष। हमारे जीवन में, जगत में विस्तारित जीवन में कृत यानि कि किया तो बहुत कुछ जाता है। कृत के विस्तार की कोई सीमा नहीं है। लेकिन वहाँ अर्थ शून्य है, अर्थ अनुपस्थित है। प्रकृति के गुण- सत, रज व तम, पुरुष को जीवन देकर, एक के बाद एक नया जीवन देकर कृत तो बहुत कुछ कर रहे हैं। लेकिन उसमें अर्थ नदारद है। इसलिए जिसे जीवन मिला, वह स्वयं भी कृतार्थ नहीं हो पा रहा है और जिसने जीवन दिया, प्रकृति के वे गुण भी कृतार्थ नहीं हो पा रहे हैं।

इसीलिए परिणामक्रम भी नहीं समाप्त हो रहा। एक जीवन में हम जो कर्म करते हैं, जिन संस्कारों का संचय करते हैं, उसी का परिणाम हमें अगले जीवन के रूप में मिल जाता है। एक जीवन का परिणाम होता है दूसरा जीवन। यही क्रम है। जीवन के सम्बन्ध में परिणाम व क्रम का यह सिलसिला चलता रहता है। इसकी परिसमाप्ति नहीं हो पाती। परिसमाप्ति तो तब हो, जब कृतार्थता की अनुभूति हो सके। यह अनुभूति पाने में हम हर बार असफल हो जाते हैं। धर्ममेघ समाधि होने पर हमें यह अनुभूति मिलती है।

इसके लिए हमें जीवन को सही व सम्यक् ढंग से देखना होगा। जहाँ हम हैं, हम सबका जीवन है, वह विश्व सचमुच का विश्वविद्यालय है। सच तो यह है कि विश्व ही एकमात्र विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय शब्द आया है 'विश्व' से। वास्तविकता यही है कि किसी भी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो विराट है, अतिव्यापक है। सम्पूर्ण विश्व ही एकमात्र विश्वविद्यालय है। हालाँकि हम सबने छोटे-छोटे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विश्वविद्यालय बना लिए हैं। इनमें पढ़कर हम स्वयं को ज्ञानी समझने लगते हैं। इनकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके स्वयं को उपाधि धारी मानने लगते हैं।

जबकि सत्य यह नहीं हैं। सत्य यही है सम्पूर्ण विश्व ही विश्वविद्यालय है। यहाँ प्रकृति व सद्गुण हमें शिक्षक के रूप में मिलते हैं और तब आयोजित होती है जीवन की विचित्र विलक्षण परीक्षाएँ। इसमें अनेकों पीड़ाओं को सहन करना पड़ता है क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई सम्भावना नहीं है। यह आग है, सोने को शुद्ध होने के लिए इसमें से गुजरना ही पड़ता है। यदि सोना कहने लगे कि मेरे लिए यह आग क्यों ? तो सोना हमेशा अशुद्ध व मूल्यहीन बना रहेगा। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं होता और केवल शुद्धतम स्वर्ण बचा रहता है। हमारे लिए प्रकृति के गुण व सद्गुरु ऐसी ही आग विनिर्मित करते हैं। कठिन व कठोर अनुशासन रचे जाते हैं ताकि अशुद्धियाँ जल सकें। इससे बचने का, भागने का कोई उपाय नहीं है। इन अनुशासनों को स्वीकारना ही उपाय है। जीवन को पूरी समग्रता से जीना पड़ेगा। ऐसा करने पर प्रकृति के गुण, स्वयं हम और हमारे सद्गुरु तीनों को कृतार्थता की अनुभूति हो सकेगी। तभी परिणामक्रम की समाप्ति होगी। एक जीवन के बाद दूसरे जीवन की आवश्यकता न रहेगी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

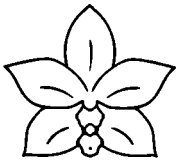

कैवल्य में थम जाता है- नये जीवन का क्रम

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग जीवन के रहस्य को उद्घाटित करते हैं। जीवन संस्कारों का संचय है और संस्कारों का निष्कासन भी। जीवन से कर्मों की कड़ियाँ जुड़ती हैं और टूटती भी हैं। इस सत्य की परीक्षा हम अपने स्वयं के जीवन में कर सकते हैं। पिछले जीवन के संस्कारों ने हमें वर्तमान जीवन में सम्बन्ध और संयोग दिए हैं। जो कुछ हमने पिछले जीवन में संचित किया था और उसमें से जो भी प्रारब्ध के रूप में परिपक्व हो सका, वह सब इस जीवन के सम्बन्धों, संयोगों व घटनाक्रमों के माध्यम से निष्कासित हो रहा है। लेकिन इसी के साथ हमारी नयी आसक्तियाँ, नए प्रेम व नए बैर, इनके साथ हमारे द्वारा किए जाने वाले शुभ व अशुभ कर्म, नवीन संस्कारों व नवीन कर्मों का संचय भी कर रहे हैं। पिछला परिणाम नए क्रम को जन्म दे रहा है। परिणाम व क्रम का यह सिलसिला हम सबके जीवन में तब तक अबाध व अविराम है, जब तक हम योग के प्रयोग के शिखर तक नहीं पहुँच जाते। धर्ममेघ समाधि की अनुभूति नहीं पा लेते।

धर्ममेघ समाधि के उपरान्त अपने कार्य को पूरा करने वाले प्रकृति के गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति हो जाती है। फिर न तो कोई परिणाम होता है और न कोई क्रम होता है। क्योंकि विवेकज्ञान के होने तक तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान से प्रारब्ध क्षीण हो चुकता है। क्लेश तनु हो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जाते हैं और साथ ही संस्कारों का भी क्षय हो जाता है। आसक्ति व अहंकार के दोष नष्ट हो जाने के कारण चित्त में निष्कामता का प्रकाश विवेकज्ञान के रूप में प्रकाशित व प्रसारित होने लगता है। ऐसी स्थिति में न तो कोई नए संस्कार जन्म लेते हैं और न ही नए कर्मों की कड़ियाँ जुड़ती हैं। इन नए संस्कार व नए कर्म के अभाव में किसी नए परिणाम की सम्भावना नहीं रहती। साथ ही नया क्रम भी बन्द हो जाता है।

इस क्रम के स्वरूप को सूत्रकार महर्षि अगले सूत्र में स्पष्ट करते हैं-

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ४/३३ ॥

शब्दार्थ= **क्षणप्रतियोगी**= जो क्षणों का प्रतियोगी है ,(और); **परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः**= जिसका स्वरूप परिणाम के अन्त में समझ में आता है, वह; **क्रम**= क्रम है।

भावार्थ= जो क्षणों का प्रतियोगी है और जिसका स्वरूप परिणाम के अन्त में समझ में आता है, वह क्रम है।

महर्षि इस अनोखे सूत्र में क्रम का बोध करा रहे हैं। वे इस सूत्र में इसे एक नया पर्याय प्रदान करते हैं, क्षण प्रतियोगी। जो क्षण प्रतियोगी है, वही क्रम है। क्रम है परिवर्तन-बदलाव। जो क्षण प्रतिक्षण होता रहता है। भले ही हमें यह समझ नहीं आता। हमें तो यह समझ में आता है परिणाम के अन्त में। हमारे जीवन के प्रत्येक घटनाक्रम में यह सिलसिला चलता रहता है। जैसे कि नवजात शिशु हर क्षण बढ़ता है। उसकी क्षण-क्षण होने वाली वृद्धि को हम न तो देख पाते हैं और न ही समझ पाते हैं। लेकिन जब उसी छोटे बच्चे के कपड़े छोटे हो जाते हैं और उसके लिए नए और बड़े कपड़े सिलाने पड़ते हैं तब हम समझ पाते हैं कि यह बच्चा तो अब बड़ा हो गया।

जीवन के क्रम में बचपन, यौवन व वृद्धावस्था आती है। इनका आगमन अचानक नहीं होता। यह प्रतिक्षण होने वाले क्रम या परिवर्तन का परिणाम है। छोटे बच्चे का बचपन कुछ ही वर्षों में किशोरावस्था में बदल जाता है और यह किशोरावस्था कुछ ही वर्षों में युवावस्था में बदल जाती है। बाद में युवावस्था थोड़े वर्षों में वृद्धावस्था में बदल जाती है। यह बदलाव, यह परिवर्तन, जिसे हमें समझने में वर्षों लगे, यह प्रतिक्षण होता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रहता है। हर आने वाला क्षण, दूसरे क्षण के क्रम फिर से बदलकर नए क्रम को प्रकट करता है। एक क्षण के बाद दूसरे क्षण में नया क्रम भी आता है। इसीलिए क्रम को क्षण का विभाजक या प्रतियोगी कहते हैं। यह क्रम सतह पर और सतह के नीचे अन्तर्गर्भ में अनवरत चलता रहता है।

इस क्रम का उल्लेख तीसरे अध्याय अर्थात् विभूतिपाद के पन्द्रहवें व बावनवें सूत्र में भी सूत्रकार महर्षि ने किया है। विभूतिपाद के पन्द्रहवें सूत्र में उन्होंने कहा- **क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः (३/१५)**-अर्थात् परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता कारण है। क्षण के साथ क्रम की स्थिति व दिशा ही परिणाम को तय करती है। उदाहरण के लिए यदि गाय या भैंस के दूध को गरम करते समय यदि उसे निरन्तर गरम करते चले जाए तो हर क्षण के साथ उसका जल वाष्पीभूत होता जाएगा और यह दूध मावा में रूपान्तरित हो जाएगा। फिर भी यदि इसे गरम करने का सिलसिला चलता रहे तो यह दूध पाउडर बन जाएगा।

लेकिन यदि दूध के साथ इस क्रम को क्षण के साथ परिवर्तित किया जाय। उसमें थोड़ी सी खटाई डालकर जमने के लिए रख दिया जाय तो वही दूध हर बदलते क्षण अपने क्रम को भी बदलेगा। उसका परिणाम दही के रूप में दिखेगा। इसी दही को बाद में मट्ठा व मक्खन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। बाद में इस मक्खन को घी के रूप में बदला जा सकता है। यह बदलाव भले ही देर से दिखाई दे, लेकिन बदलने का क्रम अनवरत चलता रहता है। क्षण-क्षण के साथ क्रम भी बना रहता है। बाद में यह हमें परिणाम के रूप में दिखाई देता है।

क्षण व क्रम के इस सम्बन्ध को महर्षि तीसरे अध्याय अर्थात् विभूतिपाद के बावनवें सूत्र में नए सन्दर्भ में कहते हैं- '**क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् (३/५२)**' अर्थात् क्षण और उसके क्रम में संयम करने से विवेकजनित ज्ञान होता है। प्रत्येक क्षण के साथ क्रम है अर्थात प्रत्येक क्षण के साथ परिवर्तन जुड़ा हुआ है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि प्रत्येक क्षण के साथ नश्वरता भी जुड़ी है। भले ही यह हमें दिखाई दे अथवा न दिखाई दे। पर इसका होना निश्चित है। जब क्षण और क्रम के सम्बन्ध में संयम किया जाता है, तो स्वतः ही इस संयम में नश्वरता का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बोध देने वाला विवेकज्ञान हो जाता है। यह विवेकज्ञान ही है, जो हमें जीवन का बोध देता है। इसके सत्य को समझाता है।

इस विवेकज्ञान की प्रगाढ़ता में हमारी आसक्तियाँ टूटती हैं। साथ ही अहंकार का अवरोध हटता है। निष्कामता, अनासक्ति, विवेक व वैराग्य विकसित होते हैं। इनके होने पर हमें क्षण व क्रम का रहस्य समग्र रूप में समझ में आता है और तब हम संस्कारों का संचय नहीं करते। तब हम क्रम के साथ कर्मों की कड़ियाँ नहीं जोड़ते। प्रवाहमान काल के साथ परिस्थितियाँ बदलती हैं, परिदृश्य बदलते हैं, घटनाक्रमों में परिवर्तन होता है। लेकिन तब संस्कारों की शृंखला नहीं जुड़ती, तब कर्मों की कड़ियाँ भी नहीं जुड़ती। ऐसे में नए नाश व नए बन्धन नहीं पनपते। बल्कि ये टूटते हैं, नष्ट होते हैं, समाप्त होते हैं।

इसी के साथ समाप्त होने लगता है परिणाम व क्रम का सिलसिला। फिर ऐसे में जीवन होने पर भी जीवनमुक्त होने की स्थिति बनी रहती है। नए जन्म व नए जीवन के कारण नहीं जुटते, नहीं जुड़ते। तब न परिणाम उत्पन्न होने की सम्भावना बनती है और न नए क्रम का सिलसिला चलता है। विवेकज्ञान, विभूतियों की परीक्षाओं को पारकर धर्ममेघ समाधि की गौरवपूर्ण अनुभूति पाता है। इस अनुभूति के साथ ही प्रकृति द्वारा आयोजित की जाने वाली सभी परीक्षाओं की समाप्ति हो जाती है। नए जन्म व नए जीवन का क्रम थम जाता है। '**पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरेशयनं**' के क्रम से प्रकृति मुक्ति प्रदान कर देती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

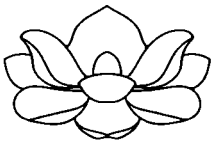

स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है- कैवल्य

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अपने परम परिणाम में कैवल्य का वरदान देते हैं। हमें हमारा परिचय देते हैं। हमें हममें प्रतिष्ठित करते हैं। हमें हमारा ज्ञान कराते हैं। कहने को तो हमें अभी भी बहुत सारा ज्ञान है। विविध विषयों पर कह सकते हैं, बोले सकते हैं। लेकिन स्वयं के बारे में हम अपरिचित हैं। ऐसी स्थिति में हम ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी हैं। अज्ञान की यह अवस्था ही कारण है सारी भ्रान्तियों का, सारे भ्रमों का, सारी मिथ्या प्रतीतियों का। लेकिन जो हम जानते हैं, वे सभी जानकारियाँ मिलकर भी हमें ज्ञान की अवस्था नहीं दे सकते हैं। अज्ञान कारण है, लेकिन ज्ञान- जानकारी के अर्थ में- कोई उपाय नहीं है। हम ज्यादा से ज्यादा जानकर भी वही रहते हैं। हमारा तथाकथित ज्ञान एक व्यसन बन जाता है। हम उसे इकट्ठा करते चले जाते हैं, लेकिन जो इकट्ठा कर रहा है, वह वही का वही बना रहता है। हम ज्यादा जानते हैं, लेकिन हम ज्यादा होते नहीं।

अज्ञान का मूल कारण केवल तभी मिट सकता है, जब स्वयं को हम जानने में समर्थ हों। जब हमारा होना मजबूत हो। जब हमारी स्व सत्ता जागे। हमारी सारी पीड़ा का मूल कारण अज्ञान है, लेकिन तथाकथित ज्ञान उपचार नहीं है, जागरण है उपचार। यदि हम इस सूक्ष्म भेद को नहीं समझते, तो पहले हम अज्ञान में खोए थे और अब ज्ञान में खो जाएँगे,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बल्कि कुछ ज्यादा ही खो जाएँगे। उपनिषदों में एक क्रान्तिकारी वचन है कि अज्ञान में तो लोग भटकते ही हैं, लेकिन ज्ञान में वे और भी गहरे अर्थों में भटक जाते हैं। अज्ञान तो भटकाता ही है, ज्ञान और भी ज्यादा भटका देता है। इस हमारे अज्ञान और ज्ञान से परे है स्वयं का ज्ञान। इसे परम ज्ञान कह सकते हैं। यह जागरण है, होश है, बोध है, यही कैवल्य है। योग की सारी विधियाँ, प्रणालियाँ, प्रयोग इसी के लिए हैं। यही अन्तर्यात्रा विज्ञान का परम निष्कर्ष है। यही अन्तिम परिणाम है। सूत्रकार महर्षि पतंजलि इसी के लिए अपने सभी सूत्र कहे हैं। उनके सभी सूत्रों का परम सार यही है। इसीलिए उन्होंने योगसूत्र के इस अध्याय को कैवल्यपाद नाम दिया है। यह अध्याय पहले के सभी तीन अध्यायों का निष्कर्ष है।

जो क्षणों का प्रतियोगी है और जिसका स्वरूप परिणाम के अन्त में समझ आता है, वह क्रम है। प्रतिक्षण एक नया क्रम होता है। इस सत्य को हम अनुभव करें अथवा नहीं। सम्पूर्ण प्रकृति में- जड़ चेतन में यह घटित होता रहता है। इस घटना को हम परिणाम के रूप में तो समझ पाते हैं, लेकिन प्रक्रिया के रूप में इसे पहचानने व जानने में असमर्थ रहते हैं। हम जाने या न जाने, समझे अथवा न समझें, लेकिन प्रकृति में क्षण व क्रम के रूप में यह प्रवाह अनवरत चलता रहता है। इसी से जीवन के नवीन रूप व परिदृश्य में नवीन रंग उभरते रहते हैं। जो इसमें तादात्म्य बनाए रखता है वह भोग में डूबा रहता है और जो इनसे तादात्म्य विसर्जित कर इनका साक्षी बनता है, वह कैवल्य का अनुभव पाता है।

कैवल्य की अनुभूति को सूत्रकार महर्षि अपने अगले और अन्तिम सूत्र में कहते हैं-

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति॥ ४/३४॥

शब्दार्थ= पुरुषार्थशून्यानाम्= जिनका पुरुष के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा, ऐसे; **गुणानाम्**= गुणों का; **प्रतिप्रसवः**= अपने कारण में विलीन हो जाना; **कैवल्यम्**= कैवल्य है; **वा**= अथवा; **इति**= यों कहिए कि; **चितिशक्तेः**= द्रष्टा का; **स्वरूप प्रतिष्ठा**= अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना (कैवल्य) है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ= प्रकृति के गुणों का पुरुष के लिए कर्त्तव्य समाप्त हो जाना और उनका अपने कारण में विलीन हो जाना कैवल्य है। अथवा द्रष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है।

इस अन्तिम सूत्र में महर्षि ने कैवल्य की परम अनुभूति के एकमेव सत्य के दो आयाम प्रकट किए हैं। इनमें शाब्दिक भिन्नता भले ही हो- पर वस्तुत: अनुभूति के तल पर दोनों एक ही हैं। इनमें से पहला आयाम है- प्रकृति के गुणों का पुरुष के लिए अर्थ विहीन होकर अपने कारण में विलीन हो जाना। इस सत्य को अर्थात् प्रकृति के गुणों की उपयोगिता व उपादेयता को महर्षि ने योगसूत्र के दूसरे अध्याय अर्थात् साधनपाद के अठारहवें सूत्र में इस तरह से कहा है- **प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् (२/१८)** अर्थात् दृश्य जो प्राकृतिक तत्त्वों और इन्द्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है प्रकाश (सत), सक्रियता (रज) और निष्क्रियता (तम)। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो और अन्तत: मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।

प्रकृति के तीनों गुण- सत, रज व तम- भोग के अनुभव के क्षण व क्रम को तब तक बनाए रखते हैं, जब तक परम ज्ञान या अपवर्ग न घटित हो जाए। अपवर्ग न होने तक जीवन विविध रूपों में सामने आता है। द्रष्टा पुरुष को जीवन के विविध रूप अवसर के रूप में प्राप्त होते रहते हैं। एक जीवन के बाद दूसरे जीवन का क्रम चलता रहता है। लेकिन जब उसे इन अनुभवों के साथ विवेकज्ञान हो जाता है, उसमें वैराग्य फलित होता है, तब वह अपवर्ग की ओर बढ़ता है। सारे अनुभव उसे परम अनुभव की ओर ले जाते हैं। इस परम अनुभव की ओर गमन के साथ उसके लिए जन्म व जीवन की आवश्यकता-अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। फिर प्रकृति के गुणों का उसके लिए कोई प्रयोजन नहीं रहता। ऐसी स्थिति में प्रकृति के गुण अपने कारण में विलीन हो जाते हैं। हालाँकि बाकी सभी के लिए उपयोगिता के अनुसार उनका अस्तित्त्व रहता है। परन्तु अपने स्वरूप में स्थित होने वाले द्रष्टा के लिए उनका कोई अस्तित्त्व व औचित्य नहीं रहता। ऐसा द्रष्टा पुरुष जिसके लिए प्रकृति के गुण पुरुषार्थ शून्य हो चुके हैं, कैवल्य में प्रतिष्ठित हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि जब द्रष्टा पुरुष घटनाक्रमों, सम्बन्धों से क्रमित रूप से अपना तादात्म्य विसर्जित कर देता है, यहाँ तक शरीर, प्राण, संस्कार आदि से अपना तादात्म्य विसर्जित करते हुए वह चित्त से भी तादात्म्य विसर्जित कर पूर्ण रूप से अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो उसकी यह अवस्था कैवल्य कही जाती है। इसके लिए उसे साक्षी होना पड़ता है। इस प्रक्रिया में द्रष्टा के लिए दृश्य के रूप व आयाम बदलते चले जाते हैं। पहले वह घटनाक्रमों का साक्षी होता है, फिर सम्बन्धों का साक्षी बनता है। बाद में वह देह का साक्षी होता है, प्राण की प्रक्रियाओं का साक्षी होता है और अन्त में वह चित्त का साक्षी होकर स्वयं में स्थापित हो जाता है। ऐसी अवस्था में न चित्त रह जाता है और न चित्त की कोई भी प्रक्रियाएँ बची रहती हैं। बस द्रष्टा पुरुष के रूप में शुद्ध अस्तित्त्व शुद्धतम अस्तित्त्व रह जाता है। द्रष्टा की यह स्वरूप प्रतिष्ठा ही कैवल्य है।

उपसंहार

इस कैवल्यपाद के इन सूत्रों में सिद्धियों की प्राप्ति के पाँच हेतुओं का तथा जात्यन्तर परिणाम का वर्णन किया गया। बाद में ध्यानजनित परिणाम के रूप में संस्कारशून्यता का प्रतिपादन करते हुए योगी के कर्मों की महिमा कही गयी। फिर साधारण मनुष्यों के कर्मफल प्राप्ति के प्रकारों का वर्णन करने के साथ अपने सिद्धान्त का युक्तिपूर्ण प्रतिपादन हुआ। इसके पश्चात् इसमें विवेकज्ञान का विषय और धर्ममेघ समाधि तथा कैवल्य अवस्था का निरूपण करते हुए इस अध्याय को पूर्णता प्रदान की गयी। इस पूर्णता में ही मानव जीवन की पूर्णता व कृतार्थता भी समाविष्ट है। इस सत्य की अनुभूति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील बने रहने में ही मानव के जन्म व जीवन की सार्थकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हमारे विचारों को आप पढ़िये और हमारी आग की चिनगारी को, जो प्रज्ञा-अभियान के अन्तर्गत **युग-साहित्य** के रूप में लिखना शुरू किया है, उसे लोगों में फैला दीजिए। जीवन की वास्तविकता के सिद्धान्त को समझिए, ख्वाबी दुनिया में से निकलिए और आदान-प्रदान की दुनिया में आइये।

आपके नजदीक जितने आदमी हैं, उनमें आप हमारे विचार फैला दीजिए। हमको आगे बढ़ने दीजिए, सम्पर्क बनाने दीजिए और आप हमारी सहायता कर दीजिए; ताकि हम उन विचारशीलों के पास, शिक्षितों के पास जाने में समर्थ हो सकें। इससे कम में हमारा काम चलने वाला नहीं है और न ही हमें संतोष होगा।

मित्रो! हमारे विचारों को लोगों को पढ़ने दीजिए। जो हमारे विचार पढ़ लेगा, वही हमारा शिष्य है। हमारे विचार बड़े पैने हैं, तीखे हैं। **हमारी सारी शक्ति हमारे विचारों में समाहित है।** दुनिया को हम पलट देने का जो दावा करते हैं, वह सिद्धियों से नहीं, अपने सशक्त विचारों से करते हैं। आप इन विचारों को फैलाने में हमारी सहायता कीजिए।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org